चेतना की शिखा

निबध

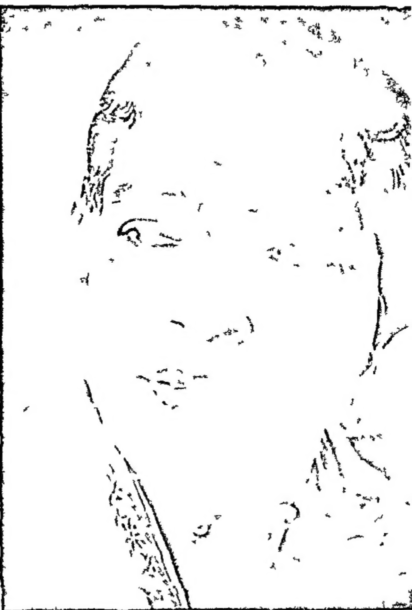


नेशनल
पब्लिशिंग
हाउस
२३ दरियागंज नई दिल्ली-११०००२

चेतना की शिखा

रामधारी सिंह दिनकर





राष्ट्रकवि रामधारी सिह 'दिनकर'
(सन १९०८ १९७४ ई)

चेतना की शिखा

रामधारी सिंह दिनकर



नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

ISBN 81 214-0132 1

मूल्य ४२.००

नेशनल पब्लिशिंग हाउस २३ दरियागंज नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित/नेशनल प्रथम संस्करण १९८७/सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस ए-९५ सेक्टर-५ नोएडा-२०१३०१ में मुद्रित। (401 11 887/N)

CHETNA KI SHIKHA (Essays) by Ramdhari Singh Dinkar
Rs 42.00

विज्ञप्ति

यह यानी सन् १९७२-७३ श्री अरविंद की सौवीं जयंती का साल बीत रहा है। इस वर्ष मुझे श्री अरविंद पर कई भाषण भी देने पड़े और कई निबंध भी तैयार करने पड़े। श्री अरविंद के दर्शन पर इस पुस्तक में जो तीन निबंध हैं वे खास कर रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर के रीडरशिप-भाषण के लिए लिखे गये थे।

श्री अरविंद की साधना अथाह थी उनका व्यक्तित्व गहन और विशाल था और उनका साहित्य दुर्गम समुद्र के समान है। मुझे अब तक ऐसा आदमी नहीं मिला जो यह दावा कर सके कि श्री अरविंद को उसने पूरी तरह समझ लिया है। मगर उन्हें समझने की कोशिश करने वाले लोग असंख्य हैं और वे सारे संसार में फैले हुए हैं।

यह पुस्तक मैं खास कर हिंदी के उन पाठकों के हाथ में देना चाहता हूं जिन्हें श्री अरविंद के प्रति श्रद्धा तो है किंतु श्री अरविंद के जीवन-दर्शन और कृतित्व के विषय में उतनी जानकारी नहीं है। यह पुस्तक श्री अरविंद से उन्हें परिचित करा देगी।

जब मैं श्री अरविंद के दर्शन पक्ष पर लिख चुका मुझे ऐसा लगा कि इस पुस्तक मे श्री अरविंद की कुछ कविताओं का अनुवाद भी जाना चाहिए जिनसे श्री अरविंद के दर्शन की पुष्टि होती है। इसी दृष्टि से पुस्तक के अंत में श्री अरविंद की चौदह कविताओं के अनुवाद सम्मिलित कर दिये गये हैं। इन अनुवादों का लक्ष्य पाठकों को श्री अरविंद की कविताओं का आनंद चखाना नहीं है गरचे सुधी पाठकों को कविता के गद्यानुवाद से भी आनंद मिल सकता है। मेरा असली उद्देश्य यह है कि पाठक श्री अरविंद के दर्शन की प्रतिध्वनि उनकी कविताओं में भी सुन सकें। कविता का पद्यानुवाद बड़ा कठिन कार्य है। अनुवाद अगर सुंदर हुआ तो मूल से वह थोड़ा अलग जरूर हो जाता है। तीन कविताओं के ये अनुवाद हैं वे छंदोबद्ध रचनाएं हैं। कई कविताओं के छंदोबद्ध अनुवाद मैंने भी किये लेकिन मुझे भासित हुआ कि इनमें श्री अरविंद अपने शुद्ध रूप में उपस्थित नहीं हो सके। तब रवींद्रनाथ की यह वसीयत याद आयी कि मेरी कविताओं के पद्यानुवाद की अनुमति नहीं देना। इसीलिए मैंने गद्यानुवाद की शरण ली। इससे आनंद में कमी भले आयी हो किंतु श्री अरविंद की भावन की पद्धति बहुत कुछ बरकरार रह गयी है।

सन् १९३९ ई के अक्टूबर महीन मे श्री अरविंद ने हिटलर पर एक कविता लिखी थी जिसमें उन्होने यह भविष्यवाणी की थी कि इस दैत्य को या तो इससे भी बडा कोई और दैत्य पछाडेगा या उस पर ईश्वर की गाज गिरेगी।' यह श्री अरविद की अन्तर्दृष्टि थी। उनकी भविष्यवाणी पूरी हो गयी। जिन्हें इस कविता के प्रति जिज्ञासा हो वे श्री अरविद की पुस्तक मोर पोयम्स' मे 'द ड्वार्फ नेपोलियन' कविता देख लें।

श्री अरविद समझते थे कि आदमी को केवल विज्ञान से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए उसे उस शक्ति का भी सधान करना चाहिए जो विज्ञान से बड़ी है जिसकी एक चिनगारी से विज्ञान का विकास हुआ है। इस भाव से प्रेरित होकर श्री अरविंद ने जो दो स्फुट कविताए लिखी थी उनके भी अनुवाद इस पुस्तक में दे दिये गये हैं। आत्मा की स्वीकृति के लिए मैटर का त्याग जरूरी नहीं है ' यह श्री अरविंद का निश्चित मत था। इलेक्ट्रोन के प्रज्वलित रथ पर शिव सवार हैं। यह भी श्री अरविद के दर्शन का मूल सूत्र है।

पटना १६ —रामधारीसिंह दिनकर

भूमिका

श्री अरविंद का शरीरपात सन १९५० ई के दिसंबर मास मे हुआ जब मैं लगभग बयालीस वर्ष का हो चुका था लेकिन मेरा भाग्य-दोष ऐसा रहा कि मै श्री अरविंद क दर्शन नहीं कर सका। अब जब भी आश्रम जाता हूं श्री मां के दर्शन करता हूं और श्री अरविंद की समाधि पर ध्यान। ध्यान चाहे जैसा भी जमे मन के भीतर एक कचोट जरूर सालती है कि हाय मै आपको उस समय नही देख सका जब आप शरीर क साथ थ।

अब तो यही एकमात्र उपाय है कि मन से यानी अध्ययन और चितन म श्री अरविंद को समझने का प्रयास करू। और जिन्होंने श्री अरविंद का नहीं दखा उनक लिए भी बस यही एक उपाय है यद्यपि अध्ययन और चिंतन अर्थात् मन सत्य का समझन का सही मार्ग नहीं है। चितन में प्रामाणिकता श्रद्धा से आती है।

श्री अरविंद के व्यक्तित्व के पहलू अनेक हैं और सभी पहलू एक स बढ़कर एक उजागर हैं। राजनीति में वे केवल पांच वर्ष तक रह थ। किंतु उतन ही दिना म उन्हान सार देश को जगाकर उसे स्वतंत्रता सघर्ष के लिए तैयार कर दिया। असहयाग की पद्धति उन्ही की ईजाद थी। भारत का ध्येय पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति है यह उदघाष भी सबस पहल उन्हीं ने किया था।

दार्शनिक तो यूरोप में बहुत उच्च काटि क हुए हैं किंतु उनक दर्शन मधा की उपज हैं तर्कशक्ति के परिणाम हैं। उन्होने जा कुछ लिखा साचकर लिखा। दार्शनिक क रूप म श्री अरविंद की विशेषता यह है कि व केवल प्रज्ञावान पडित ही नहीं बहुत बड यागी भी थ। अतएव उन्होंने जो कुछ लिखा देखकर लिखा अनुभव करक लिखा। श्री अरविंद क दर्शन का सार उनकी अनुभूति है। विचार उस अनुभूति को केवल परिधान प्रदान करता है। श्री अरविंद न भारत की इस परपरा को फिर स प्रमाणित कर दिया कि सच्चा दर्शन वह ह जा सोचकर नहीं देखकर लिखा जाता है।

और श्री अरविंद की कविता के विषय म क्या कहा जाय? श्री अरविंद न कभी कविताए भी लिखी हैं, जिनके जाड़ की या जिनस अच्छी कविताए ससार म मौजूद हैं। किन्तु यही बात क्या सावित्री के प्रसंग में कही जा सकती है? सावित्री काव्य मधा का काव्य नहीं है

कोई भी विलक्षण काव्य केवल मेधा के बल से नहीं लिखा जाता है। जिस लोक की छोटी सी प्रकाश कणिका महाकवियों के मन को उद्भासित करके उनसे अलौकिक काव्य का निर्माण करवाती है, सावित्री की रचना उस लोक के सूर्य के साथ बैठकर की गयी है या क्या पता श्री अरविंद उस सूर्य के साथ एकाकार हो गये हों। श्री नीरदवरण ने मुझे बतलाया है कि सावित्री को श्री अरविंद ने बारह बार लिखा था, और यह इसलिए नहीं कि कवि को पहले के प्रयुक्त शब्द, बिंब या मुहावरे पसंद नहीं थे, बल्कि इसलिए कि योग के बल से श्री अरविंद चेतना के आकाश में ज्यों ज्यों ऊपर उठते गये, सावित्री का संशोधन अनिवार्य होता गया। सत्य तक ज्ञान का सही मार्ग दर्शन नहीं, काव्य का मार्ग है। विशेषतः यौगिक अनुभूतियों का वर्णन तर्क नहीं कर सकता, कविता कर सकती है। जो बुद्धि का देश नहीं है, जहां तर्क के सोपान नहीं हैं, वहां छलांग केवल कविता ही मार सकती है। इसीलिए मेरी मान्यता है कि श्री अरविंद की अनुभूतियों और आध्यात्मिक उपलब्धियों का संपूर्ण प्रतिनिधित्व सावित्री करती है, लाइफ डिवाइन नहीं। यदि संसार का आध्यात्मीकरण होना है (और मेरी आशा है कि वह होकर रहेगा), तो मानवता के इतिहास में सावित्री का वही स्थान होगा, जो स्थान आज गीता का है, धम्म और उपनिषदों का है। अंग्रेज सावित्री को नहीं पढ़ते, इसका कारण यह है कि योग की कविता उनकी समझ में नहीं आती है। किंतु जैसा श्री अरविंद कह गये हैं, योग मनुष्य मात्र को प्राप्त होगा। जब मनुष्य जाति योग की पारंगी, सावित्री काव्य मानव मात्र के लिए अत्यंत मूल्यवान हो उठेगा।

योगी, कवि और वैज्ञानिक, एक ही व्यक्ति में इन तीनों का समन्वय इतिहास में और कभी हुआ था या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है। अगर ऐसा कोई व्यक्ति पहले कभी हुआ था तो वह भारत में ही हुआ होगा। किंतु श्री अरविंद के व्यक्तित्व में योगी, कवि और दार्शनिक तीनों का समन्वय था और वे सब-के-सब एक ही लक्ष्य की ओर गतिशील थे। इसीलिए श्री अरविंद का ध्यान करते समय ऐसा भासित होता है, मानो हम मानवता के महासूर्य को देख रहे हों। वैसे तो मात्र कवि और दार्शनिक के रूप में भी श्री अरविंद अत्यंत वरेण्य हैं किंतु उनकी सबसे बड़ी महिमा यह थी कि वे योगी थे। उनके दर्शन और काव्य की जो धार्मिक शक्ति है, उनके भीतर जो प्रामाणिकता है, यह श्री अरविंद की योगसाधना से आयी है। योग के बल से ही उन्होंने सत्य को देखा और योग के बल से ही उन्हें यह शक्ति मिली कि उस सत्य को वे भाषा में अभिव्यक्त कर सकें। सावित्री की असंख्य पंक्तियों में जो त्वरा तथा बहुदर्शिगामिनी अभिव्यंजना और शक्ति है, उसका कोई और समाधान नहीं दिया जा सकता।

कोई आश्चर्य नहीं कि पंडित सुमित्रानंदन पंत ने मार्क्स को ऊंट और श्री अरविंद को पहाड़ माना है। विज्ञान के उत्थान ने मनुष्य को जो भौतिक सिद्धि प्रदान की, उसके सबसे बड़े व्याख्याता मार्क्स हैं। किंतु वे उतने ही एकांगी हैं, जितना एकांगी विज्ञान है। मार्क्स ने आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि आत्मा विज्ञान की प्रयोगशाला में प्रमाणित नहीं की जा सकती। वे केवल मैटर को लेकर बैठ गये। यही उनकी एकांगिता थी।

श्री अरविंद ने आत्मा के साथ मैटर को भी स्वीकार किया और मनुष्य को यह बताया कि तुम यद्यपि प्रकृति के अब तक के निर्माणों में सबसे श्रेष्ठ हो किंतु विकास के क्रम में तुमने अभी आधी दूरी भी तय नहीं की है। मन तुम्हारा सबसे बड़ा यंत्र है किंतु इससे भी सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम यंत्रों की संभावनाएं तुम्हारे भीतर छिपी हुई हैं। तुम्हें चाहिए कि तुम मन के धरातल से ऊपर उठने का प्रयास करो और उन शक्तियों को प्राप्त करो जो मन की सीमा के पार तुम्हारा इंतजार कर रही हैं।

डार्विन ने मनुष्य से उसका देवत्व छीन लिया था। फ्रायड ने बताया कि आदमी करता तो वही काम है जिसे वह करना चाहता है किन्तु वह करना क्या चाहेगा इस पर उसका अधिकार नहीं है। इस प्रकार मनुष्य अपने देवत्व और स्वाधीनता दोनों के विषय में संदिग्ध हो गया था। श्री अरविंद मनुष्य को यह आशा दिला गये हैं कि मनुष्य देवता भी बन सकता है और स्वाधीन भी हो सकता है।

यद्यपि विज्ञानमय कोश के नाम से उपनिषदों के ऋषि चेतना की उस स्थिति को भी जानते थे जो मन से आगे पड़ती है किंतु मन और विज्ञान के बीच कौन-कौन से पड़ाव हैं इसका आख्यान श्री अरविंद से पूर्व किसी ने नहीं किया था।

श्री अरविंद का दूसरा बड़ा अवदान यह है कि उन्होंने वैयक्तिक मोक्ष को परम ध्येय नहीं माना। उनका परम ध्येय अतिमानसी चेतना को उतारकर संपूर्ण मानव जाति का अध्यात्मीकरण है मनुष्य को उठाकर अतिमानसी चेतना के धरातल पर ले जाना है।

और चेतना के आकाश में मनुष्य ऊपर कैसे उठे कैसे उसे अतिमानसी अवस्था की प्राप्ति हो इसके लिए श्री अरविंद ने पूर्ण योग का मार्ग निर्धारित किया।

मेरी वर्तमान पुस्तक की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि इसमें श्री अरविंद के पूर्ण योग पर कोई निबंध नहीं है। लोभ तो हुआ था कि औरों की देखादेखी मैं भी एक निबंध लिख डालूं और उसे इस पुस्तक में डाल दूं किन्तु आत्मा ने ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी। मैंने देखा कि वर्षों की साधना के बाद भी मुझमें यह सामर्थ्य नहीं है कि श्री अरविंद के पूर्ण योग का आख्यान मैं प्रामाणिकता और सफाई के साथ कर सकूं। विद्या के विषय में दूसरों के उद्धरण से प्रामाणिकता आ जाती है किंतु साधना के पक्ष में यह प्रामाणिकता अपनी आत्मा के भीतर से आनी चाहिए।

साधना की सभी पद्धतियां एक ही दिशा में संकेत करती हैं अर्थात् वह मार्ग पकड़ो जिससे मन निर्विचार हो जाय। महर्षि रमण का तो कहना था कि मन की निर्विचार स्थिति यही चरम ध्येय है। साधकों में वे कहते थे कि पुस्तक में जैसे हर दो अक्षरों के बीच कागज का एक सादा अंश रहता है उसी प्रकार मन में उठने वाले हर दो विचारों के बीच एक अवकाश है जहां विचार नहीं है। इसी अवकाश को अनुगमन को बढ़ाते-बढ़ाते आदमी संपूर्ण निर्विचार की स्थिति में पहुंच जाता है। वे यह भी कहते थे कि सभी विचार मन के बाहर से आते हैं इसलिए जब भी कोई विचार उठे अपने-आपसे प्रश्न करो कि यह विचार कहां से आया है किसके पास आया है? बस इतने से ही वह विचार लौट जायगा जैसे राक्षस

ही चोर लौट जाता है।

महर्षि कहते थे कि चाहे जिस मार्ग से भी चलो एक स्थान पर पहुँचकर तुम्हें इस प्रश्न का सामना करना पड़ेगा कि मैं कौन हूं? इसलिए सुगम यह है कि तुम इसी प्रश्न से अपनी साधना आरम्भ करो। मैं कौन हू इस प्रश्न पर सोचते-सोचते तुम्हारा मन शांत हो जायेगा और तुम्हे अपने स्वरूप का ज्ञान हो जायगा।

कोई कोई साधक महर्षि से शिकायत करता कि मैं कौन हूं मैं कौन हूं यह पूछते-पूछते बीस वर्ष बीत गये लेकिन मन तो शांत होने का नाम ही नहीं लेता है।

तब महर्षि कहते कि मन को समेटकर यदि तुम शांति में नहीं ले जा सकते तो उसे तुम सर्वतोभावेन मुझे समर्पित कर दो। मै मन को मार गिराऊंगा उसे शांत कर दूंगा।

लेकिन प्रत्येक साधक जानता है कि मन को समेटकर उसे शांत कर देना जितना कठिन है मन को सर्वतोभावेन गुरु या भगवान के चरणों में डाल देना भी उतना ही मुश्किल काम है। इन दोनों में से कोई भी काम आसान नहीं है। होय घुनाच्छर न्याय जो पुनि प्रत्यूह अनेक।

श्री अरविंद का पूर्ण योग भी इन्हीं दो उपदेशों से आरंभ होता है। मन को शांत करो और सर्वतोभावेन भगवान के प्रति समर्पित हो जाओ। मन के शांत होने पर ही तुममें यह योग्यता आयगी कि तुम भगवान के प्रति समर्पित हो सको और जब तुम्हारा कमल भगवान की ओर अपना हृदय खोलेगा तभी उसमें भागवत करुणा का स्रवण होगा।

कई साधकों का यह भाव है कि अपनी ओर से हमें कुछ भी करना नहीं है। समग्र मानवता की ओर से योग स्वयं श्री अरविंद कर गये हैं या उसकी साधना श्री मां कर रही हैं। हमारा काम यह है कि हम भगवान को समर्पित हो जायं और अपने कमल को उनकी ओर खोल दें। बाकी काम भागवत करुणा करेगी।

क्या इसी को कुछ नहीं करना कहते हैं? भगवान की ओर अपने कमल को उन्मुक्त किये रहना यह क्या मामूली बात है यह क्या योग का सार नहीं है?

साध्य वार्ता में कहीं पढ़ा था कि हठयोगियों को श्री अरविंद अपना शिष्य नहीं बनाते थे। इसलिए नहीं कि हठयोग कोई हीन मार्ग है बल्कि इसलिए कि यह मार्ग श्री अरविंद का मार्ग नहीं था।

जब मैं श्री अरविंद आश्रम जाने लगा था श्री ऋषभचरण जैन जीवित थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा श्री अरविंद योग कैसे करते थे? श्री ऋषभचरण जी ने कहा मै कुछ नहीं बता सकता। श्री अरविंद मकान की जिस ऊपर वाली कोठरी में रहते थे मैं ठीक उसी कोठरी के नीचे वाले कमरे में था। ऊपर से निरंतर धप् धप् की आवाज आती रहती थी जिससे मैं समझता था कि श्री अरविंद टहल रहे हैं। यही श्री अरविंद का योग था।

श्री सत्प्रेम ने भी लिखा है कि वर्षों तक श्री अरविंद छः बजे शाम से लेकर छः बजे भोर तक निमग्न रहते थे और तब आठ घंटे योग के लिए टहलते थे।

श्री अरविंद का जीवन सतह पर रहा ही नहीं अतएव उनके आंतरिक जीवन और साधना के विषय में कोई भी बात अधिकारपूर्वक नहीं कही जा सकती। उनके कमरे के साथ लगा हुआ एक बरामदा था। सन् १९२६ से लेकर सन् १९३८ ई तक वे कोठरी और बरामदा दोनों में आते जाते रहते थे। किंतु सन् १९३८ से लेकर सन् १९५० ई तक वे बरामदे में आये ही नहीं कोठरी में ही रह गये। यह रहस्य मुझे श्री चंपकलाल जी से ज्ञात हुआ जो श्री अरविंद के द्वारपाल थे। श्री चंपकलाल जी ने मुझे बताया मैं रात में इस जगह सोता था जिससे गुरु को दूसरी बार आवाज देने का कष्ट न करना पड़े।

अर्थात् श्री अरविंद टहलते हुए भी चेतना के आकाश में होते थे मंजिल-पर-मंजिल पार करते होते थे जो अभव है उसे भेदते होते थे जो अचिंत्य है उसे देखते होते थे। श्री अरविंद का योग चेतनापूर्वक आत्मानुसंधान का योग था। उनका योग खूंटी को कसकर चेतना के तारों को ऊपर ले जाने का योग था।

यह वह योग है जो नाक दबाने से पूरा नहीं होता कान और आंख बंद कर लेने से नहीं बढ़ता न आसन और धोती नेती से पूर्ण होता है। यह संपूर्ण चेतना का योग है। साधक को इस योग में संपूर्ण अस्तित्व को लगाना पड़ता है।

मन को वहां शांत करो जहां उसका शांत होना बहुत कठिन है यानी दफ्तर में कारखाने में मेले और बाजार में तथा सबसे बढ़कर परिवार में।

हठयोग राजयोग और प्राणायाम से भिन्न श्री अरविंद का योग शांतियोग है।

पात्र को स्वच्छ करके उसे रिक्त छोड़ दो। तभी उसमें भागवत करुणा का मधु स्रवित होगा।

योग क्रिया नहीं अस्तित्व बोध है।

चेतना के बिखरे सूत्रों को एकत्र करके योग किया जाता है। अगर वे फिर बिखर गये तो दिक्कत पेश आती है।

जैसे सारस पक्षी गरदन तानता है वैसे ही गरदन तानकर चेतना मन की सीमा का अतिक्रमण करती है।

आरंभ से ही चेतना बराबर ऊपर उठना चाह रही थी। उसके इसी ऊर्ध्वगामी प्रयास से एक बिंदु पर निरंतर पड़ने वाले दबाव से मस्तिष्क की उत्पत्ति हुई। जो जानना चाहता है वह मस्तिष्क नहीं है, मस्तिष्क के पीछे छिपी कोई और शक्ति है जो मस्तिष्क का उपयोग करती है। इसीलिए मन के निचले स्तर को संकेतित करने के लिए श्री अरविंद ने ब्रेन-माइंड नामक एक नया शब्द निकाला था।

चेतना ही पंथ है चेतना ही कुंजी है चेतना ही गंतव्य है।

चेतना को केवल पांव ही नहीं हैं आंख भी हैं बांह भी हैं और पंख भी हैं।

जब तक सब कुछ समझ में नहीं आता तब तक कुछ भी समझना मुश्किल है।

सोचने की शक्ति बड़ी है लेकिन न सोचने की शक्ति उससे भी बड़ी है।

एसा कोई काम नहीं जिसे मन तो करता है लेकिन विचार-मुक्त मन नहीं कर सकता।

मन ज्ञान का साधन है वह ज्ञान का संगठन करता है।

शांति ही वह कुंजी है जिससे अपने ऊपर स्वामित्व प्राप्त होता है।

प्राणिक (वाइटल) को बार-बार साफ करो मगर वह बार-बार गंदा होगा। मन के शांत होने पर प्राणिक उथल पुथल स्वयं शांत हो जाती है।

जीवन निद्रा और मृत्यु—ये चेतना के मार्ग पर स्टेशन-मात्र हैं। सारी सृष्टि चित् का विलास है।

मृत्यु जीवन की अस्वीकृति नहीं उसकी प्रक्रिया है।

विकास का क्रम अवरुद्ध नहीं हुआ है। वह अभी भी चल रहा है। योग वह प्रक्रिया है जो विकास की प्रक्रिया को तेज करती है। इसीलिए योग मनुष्य मात्र को प्राप्त होगा।

और अंत में नये मनुष्य की पहचान यह है कि वह एक दिन अचानक जग पड़ता है और सोचने लगता है कि उसे कोई ऐसी वस्तु चाहिए जो न विज्ञान के पास है न धर्म के पास है न कंचन कामिनी और कीर्ति में है।

पटना १६ —रामधारी सिंह दिनकर
२६ जनवरी १९७३

प्राक्कथन

राष्ट्रकवि स्वर्गीय रामधारी सिंह दिनकर की पुस्तकें एक बार पुन सुसज्जित रूप मे आपके हाथों म हैं। उनके देहावसान के बाद से य पुस्तकें अनियमित रूप से प्रकाशित हो रही थीं जिसस दिनकर-साहित्य के पाठकों उनके साहित्य पर शोध करनेवाले शोधार्थियों समालोचकों और अध्येयताओं को य पुस्तकें सरलता से उपलब्ध नहीं हो पा रही थीं। इन असुविधाओं के लिए मैं उन सभी सहृदय विद्वान पाठकों स व्यक्तिगत तौर पर क्षमा चाहता हूं। हालांकि इसके पीछे कुछ एसे अपरिहार्य कारण थे जिनपर मेरा वस नहीं था।

पूज्य बाबा (दिनकर जी) ने अपनी तैंतीस पुस्तकों का प्रकाशनाधिकार मुझे दिया है। इनमें से अधिकांश पुस्तकें नेशनल पब्लिशिंग हाउस स प्रकाशित हो रही हैं।

इन पुस्तकों का पुन प्रकाशन श्रद्धेय गंगा बाबू प्रो गोवर्द्धन राय शर्मा और डॉ लक्ष्मीमल्ल सिंघवी के सहयोग के बिना असंभव था। इनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करू एसी धृष्टता मैं नहीं कर सकता। तीनों ही बाबा के घनिष्ठतम मित्र हैं और मेरे लिए उसी रूप में आदरणीय भी। इन लोगों का मार्गदर्शन और आशीर्वाद मुझ मिलता रहे यही कामना है। प्रकाशक श्री सुरेन्द्र मलिक ने इन पुस्तकों को प्रकाशित करने म जो तत्परता और निष्ठा दिखायी है इसके लिए मैं उनका आभारी हूं।

—अरविन्द कुमार सिंह

दिनकर भवन
आर्य कुमार रोड
पटना ८०0004

क्रम

श्री अरविंद: मेरी दृष्टि मे

अभी ससार मे चितकों का एक खासा दल है जो श्री अरविंद को केवल मनीषी दार्शनिक और कवि समझकर सतोष कर लेता है। मेरा विश्वास है कि श्री अरविद केवल दार्शनिक कवि और मनीषी ही नहीं थे व मनुष्य के आसन्न आध्यात्मिक विकास के नेता योगी और युगावतार थे। श्री अरविद ने योग और दर्शन पर जो अनेक ग्रंथ लिखे हैं वे मनुष्य की ऊंची-से ऊंची मेधा के श्रेष्ठ प्रमाण हैं। किंतु क्या केवल मेधा के बल पर सावित्री काव्य की रचना की जा सकती थी? सावित्री के रचयिता की दृष्टि के सामने गोचर और अगोचर दोनों ही निरावरण हो गये थे। बुद्धि गोचर तक ही विहार करती है। बुद्धि के परे भी कोई शक्ति है जो अगोचर को देख लेती है। श्री अरविद मे बुद्धि का बड़ा ही प्राबल्य है किंतु सावित्री काव्य बुद्धि की रचना नहीं है। वह उस शक्ति का चमत्कार है जो बुद्धि की सीमा के परे विहार करती है जिसमे अदृश्य देखा जाता है और अकथनीय का कथन किया जाता है। सावित्री अकथनीय के ही कथन का प्रयास है।

एक समय एशिया विशेषत भारतवर्ष अपने आध्यात्मिक तेज के कारण ससार का अग्रणी महादेश समझा जाता था। आधुनिक युग में आकर संसार का अग्रणी महादेश यूरोप हो गया क्योकि विज्ञान और टेक्नालाजी को सिद्ध करके उसने अतुलित शक्ति और समृद्धि प्राप्त कर ली। एशिया ने आत्मा के क्षेत्र में विशेषता अर्जित की थी। यूरोप ने शरीर की भूमि पर चमत्कार उत्पन्न कर दिया। लगता है भगवान की अगली इच्छा यह है कि यूरोप और एशिया की विशेषताओ के बीच समन्वय उत्पन्न किया जाय जिससे अगला मनुष्य तन से सबल और समृद्ध तथा मन से योगी और निरासक्त हो।

श्री अरविंद के विचारों के संपर्क म आने से बहुत पूर्व मैने अपनी एक कविता में कहा था

जागो रसिक विराग लोक के मधुवन के संन्यासी।

अब मुझ लगता है कि इस पक्ति मे उसी मनुष्य की क्षीण झांकी है जिसकी सपूर्ण कल्पना श्री अरविंद ने की है।

इस दृष्टि से पांडिचेरी का आश्रम भगवान की ही ओर से किया जाने वाला एक नूतन

प्रयोग है। श्री मां की नियति यह थी कि वे श्री अरविंद की साधना में सहयोगिनी बनें। किंतु उनका जन्म यूरोप में हुआ। श्री अरविंद की साधना में यूरोप का जो योगदान देना था उसका बहुत बड़ा अंश आश्रम में श्री मां के साथ पहुंचा। यह भी ध्यान देने की बात है कि जिस व्यक्ति को भगवान मनुष्यता के आध्यात्मिक उद्धार का माध्यम बनाना चाहते थे उस व्यक्ति को उन्होंने जीवन के पहले बीस वर्षों तक भारत के संस्कार से अछूता और बहुत दूर रखा था। श्री मां यूरोप के संस्कार में पलकर भारत आयीं और श्री अरविंद भी पहले भारत में और फिर इंग्लैंड में यूरोपीय संस्कार में ही पले। यह सब कुछ भागवत योजना के अनुसार था।

जब श्री अरविंद का जन्म हुआ यूरोप अपनी सभ्यता के शिखर पर पहुंचा हुआ था और श्री अरविंद के पिता डॉक्टर कृष्णधन घोष इस सभ्यता के अनन्य पुजारी थे। यूरोपीय सभ्यता के सामने वे भारतीय सभ्यता को बहुत ही दुर्बल अंधविश्वासी और निस्सार समझते थे। उन्होंने पूरी कोशिश की थी कि श्री अरविंद का लालन पालन और शिक्षा दीक्षा यूरोपीय विधि से हो और उन पर भारतीय संस्कार की छाया भी न पड़े। और हुआ भी यही। बीस वर्ष की उम्र तक श्री अरविंद भारत की कोई भाषा नहीं जानते थे। किंतु जिस व्यक्ति को भारतीय संस्कार से इतना अछूता रखने की कोशिश की गयी थी भगवान ने उसी व्यक्ति को अध्यात्म के उद्धारक और भारतीय संस्कार का नवोधन मर्हर्षि बना दिया।

श्री अरविंद के छात्र जीवन के बारे में जो जानकारी मिलती है उससे यह अनुमान तो होता है कि यह युवक कवि चिंतक देशभक्त और पत्रकार हो सकता है किंतु इसके लक्षण दिखायी नहीं देते कि यह योग-साधना की ओर जायगा। श्री अरविंद ने लिखा है कि अपनी किशोरावस्था में वे केवल संदेहवादी ही नहीं करीब-करीब नास्तिक भी थे। श्री अरविंद को योग की पहली दीक्षा उनके बड़ौदा जीवन-काल में मिली और यह दीक्षा उन्हें एक महाराष्ट्रीय योगी ने दी थी जिनका नाम श्री भास्कर लेले था। किंतु संसार से अलग ले जाने के पहले भगवान श्री अरविंद को संसार के तूफानों का भी स्वाद चखा देना चाहते थे। इसीलिए बंग भंग के समय श्री अरविंद बड़ौदा से कलकत्ता चले आये और राष्ट्रीय आंदोलन की अत्यंत प्रखर धारा में उन्होंने अपने-आपको फेंक दिया। उन दिनों वंदे मातरम् में श्री अरविंद के जो लेख निकले भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में उतने प्रखर और निर्भीक लेख और कभी नहीं निकले थे। राजनीति के क्षेत्र में श्री अरविंद ने केवल पांच वर्ष काम किया या यह भी कह सकते हैं कि केवल ढाई वर्ष काम किया किंतु उतने ही समय में सारा देश उनकी पूजा करने लगा और उनके लेखों के प्रभाव से देशभक्ति के मतवाले तेजस्वी युवकों की एक नयी पीढ़ी तैयार हो गयी। केवल ढाई वर्षों के अंदर श्री अरविंद ने देश के हृदय और मस्तिष्क को उस तरह से मथ डाला जिस प्रकार वह पहले कभी मथा नहीं गया था वीरता और निर्भीकता की ऐसी-ऐसी बातें कहीं जो पहले कभी नहीं कही गयी थीं। तत्कालीन कांग्रेस को उन्होंने ढाई वर्ष में ही पीटकर ठंडा कर दिया और जनता के हृदय पर इस बात को पक्की तरह से बिठा दिया कि नरम दलीय कांग्रेस राष्ट्रीय नहीं है और भारत का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता होना चाहिए।

तब श्री अरविंद मानिकतला बम-केस म गिरफ्तार हुए और लोगों का यह आशंका होने लगी कि उन्हें फासी या कालेपानी की सजा अवश्य हो जायेगी। इस मुकदमे में श्री अरविंद के वकील श्री सी आर दास थे। उन्होने जज को संबोधित करते हुए कहा था कि जो युवक आपके सामने मुजरिम के रूप में खड़ा है वह मानवता के इतिहास में अमर रहेगा जबकि आप और हम विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जायेंगे। अतएव आपको यह मानकर चलना चाहिए कि श्री अरविंद इस अदालत के सामने नहीं इतिहास के हाइकोर्ट के सामने खडे हैं। श्री सी आर दास की यह भविष्यवाणी सत्य निकली। श्री अरविंद रिहा कर दिये गये और मानवता के इतिहास ने सचमुच ही उन्हें अपने शिखर पर बिठा लिया।

सन् १९१० ई में श्री अरविंद अचानक राजनीति से मुख मोड़कर पांडिचेरी चले गये और वहाँ लिखने पढ़ने और अध्यात्म की साधना में लीन हो गये। अनुमान है कि जब वे अलीपुर जेल में बंद थे तभी उन्हें कोई ईश्वरीय सकेत मिला था कि अब तुम्हें किसी और भी महत्तर साधना में लगना है अतएव उसके लिए कोलाहल से अलग एकांत में चले जाओ।

श्री अबानाल पुराणी श्री अरविंद के अन्यतम भक्तो में से थे और जवानी के दिनों में वे क्रांतिकारी भी रहे थे। सन् १९१८ में वे जब श्री अरविंद से मिलने को पांडिचेरी गये उन्होंने निवेदन किया कि हमारी क्रांति की तैयारी पूरी हो चुकी है। आप हमारा पथ-प्रदर्शन करने को चलिए। उस समय श्री अरविंद ने पुराणी जी से कहा था कि रक्तपात की आवश्यकता नहीं है। भारत रक्तपात के बिना ही स्वाधीन हो जायगा। तुम योग की ओर उन्मुख हो। अतएव तुम्हारे लिए भी यही उचित है कि आश्रम में रहकर योग करो।

भारतीय स्वाधीनता सग्राम को तीव्र बनाने के लिए श्री अरविंद राजनीति में पड़े थे किंतु विश्व-मानवता के उद्धार के लिए वे योग-साधना में लग गये। परंतु निभृत एकांत में रहते हुए भी अपनी ओर से वे सारे ससार के सपर्क में थे। जब हिटलर ने सभ्यता को रौंदने के लिए युद्ध आरंभ किया श्री अरविंद ने मित्र राष्ट्रो के समर्थन में वक्तव्य दिया था। जब श्री स्टैफोर्ड क्रिप्स समझौते की योजना लेकर भारत आये थे श्री अरविंद ने भारतीय नेताओं को सलाह भेजी थी कि वे क्रिप्स की योजना को स्वीकार कर ले। उस समय देश के नेताओं ने क्रिप्स की योजना को ठुकरा दिया किंतु अब कहीं कहीं यह एहसास जगने लगा है कि अगर क्रिप्स योजना मान ली गयी होती तो वह देश के विभाजन से श्रेष्ठ समाधान हुआ होता।

किंतु वह महत्तर आदर्श क्या था जिसे प्राप्त करने के लिए श्री अरविंद ने राजनीति से अपना हाथ खींच लिया? श्री अरविंद ने जो कुछ लिखा है उसके सहारे ही हमें उत्तर की कल्पना करनी होगी। संसार में दु ख असंख्य है और उन्हीं दुखों को दूर करने के लिए सरकारें बनती हैं सुधार के आंदोलन चलाये जाते हैं योजनाएं बनती है और लड़ाइयाँ भी लड़ी जाती हैं। किंतु इन समस्त चेष्टाओं के बावजूद दु ख अपनी जगह पर कायम है।

योजनाएं जहां सफल होती हैं वहां भी सुखों के साथ असंतोष और अशांति में वृद्धि होती है। सभी युद्ध शांति के लिए ही लड़े जाते हैं लेकिन शांति आती नहीं और आ भी गयी तो वह टिकती नहीं है। श्री अरविंद का कहना है कि ये सारे आंदोलन ये सारी क्रांतियां ये सारी लड़ाइयां केवल पैबंद हैं। असली काम यह है कि मानवता को कोई नया वस्त्र दिया जाय। मानवता का नया वस्त्र यानी मनुष्य का संपूर्ण रूपांतरण। सृष्टि में पहले सब कुछ जड़ था। जड़ में से जीवन निकला और जीवन के भीतर से मन अथवा मानस उत्पन्न हुआ। शंकर के मायावाद को श्री अरविंद नहीं मानते न वे वैज्ञानिकों के भौतिकतावादी विकासवाद को स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि प्रकृति द्रव्य या मैटर जड़ नहीं है। ब्रह्ममय होने के कारण उसके भीतर भी चेतना काम कर रही है। पुद्गल अगर जड़ होता तो उसके भीतर से चेतन कैसे प्रकट हो सकता था? मनुष्य लाखों वर्षों से मन के धरातल पर खड़ा है मन की समस्याओं का समाधान वह मन के ही साधनों से खोजने में लीन है किंतु समाधान उसे मिल नहीं रहा है। न वह समाधान उस मन के जरिये कभी प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य एक छलांग लगाये और मन की सीमा के बाहर पहुंच जाय। मन की सीमा के परे वाली भूमि को श्री अरविंद अतिमानस कहते हैं। जब तक मनुष्य की अतिमानसी जाति उत्पन्न नहीं होती उसकी समस्याओं का समाधान नहीं मिलेगा।

अतिमानस की भूमि का निर्देश श्री अरविंद से पूर्व किसी भी ऋषि या दार्शनिक ने नहीं किया था। चेतना के आकाश का अनुसंधान करते-करते श्री अरविंद एक ऐसे देश में जा पहुंचे जो नक्शे पर था ही नहीं। वही देश अतिमानस का देश है। अतएव यह कल्पना सही या गलत है यह शास्त्रों के उद्धरण द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता। सत्य उसे हम इसलिए मानते हैं कि श्री अरविंद ने जीवन भर अनेक रूपों में उसकी व्याख्या की है और हमसे कहा है कि हम उस पर विश्वास करें और उसे प्राप्त करने के लिए साधना और प्रयास भी। जब जीवन में से मन प्रकट हुआ जीव-सृष्टि में बड़ी भारी क्रांति मच गयी। जिस दिन मानस के भीतर से अतिमन प्रकट होगा उस दिन मानव समाज में उससे भी बड़ी क्रांति घटित हो जायगी। अतिमानस के अवतीर्ण होने पर यह भौतिक जगत रूपांतरित हो जायगा और मनुष्य की एक ऐसी योनि प्रकट होगी जो वर्तमान योनि से भिन्न और अत्यंत श्रेष्ठ होगी और जो समस्याएं मनुष्यों को आज घेरे हुए हैं उनका कहीं नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

श्री अरविंद ने यह भी कहा है कि विकास का क्रम अवरुद्ध नहीं हुआ है किंतु बंदर अब आदमी नहीं बनेगा। विकास के क्रम ने मनुष्य को खींचकर मन के धरातल पर पहुंचा दिया है अब जो भी विकास होगा वह मनुष्य के शरीर का नहीं उसकी चेतना का होगा। विकास का अगला सोपान अति-मन है मनुष्य की अगली यात्रा मानस से चलकर अति-मानस पर पहुंचने की यात्रा है। मनुष्य अपने को रूपांतरित करे इसके सिवा उसके सामने कोई और विकल्प नहीं है।

श्री अरविंद माया में विश्वास नहीं करते। वे ब्रह्ममय होने के कारण सारे जगत् को सत्य मानते हैं। वे वैयक्तिक मुक्ति भी नहीं चाहते न संसार को भूलकर ब्रह्म सुख के समुद्र में मग्न रहना चाहते हैं। उनका ध्येय इसी जगत् में भागवत जीवन की स्थापना है।

उनका ध्येय मनुष्य की चेतना को एक नये धरातल तक पहुंचाना है जो अतिमानस का धरातल है।

भोग और वैराग्य ये जीवन के दो अति बिंदु हैं दो चरम छोर हैं। भोगी केवल शरीर के सुख के लिए जीता है और वैरागी शरीर को सुखा कर उसका तिरस्कार करके आत्मा को पाना चाहता है। श्री अरविंद समझते हैं कि ये दोनो ही अतिवादी दृष्टिकोण हैं। शरीर आत्मा का मंदिर है अतएव शरीर की उपेक्षा नही की जा सकती। और आत्मा की भी उपेक्षा करना व्यर्थ है क्योंकि शरीर के भीतर से आत्मा ही अभिव्यक्त होती है। आत्मा के अस्तित्व का यह भी एक प्रमाण है कि समस्त शारीरिक सुखों के बीच भी हम अतृप्ति का अनुभव करते हैं किसी ऐसे लोक में पहुचना चाहते हैं जो शरीर की सीमा से परे है जो आत्मा अथवा अध्यात्म का लोक है।

सत्प्रेम ने लिखा है कि पिछले पचास वर्षों से मनोविज्ञान इस कोशिश मे रहा है कि मनुष्य के भीतर जो दानव है उसके पाव और भी दृढ़ता से जमा दिये जाये। मनुष्य उसे उतना बुरा न समझे जितना आज तक वह समझता आया है। आंद्रे मालरो की कल्पना यह है कि अगले पचास वर्षों तक हमे यह कोशिश करनी होगी कि मनुष्य के भीतर जो देवता उपेक्षित पडे हैं उनका तालमेल इस दानव के साथ कैसे बिठाया जाय। अर्थात् पुद्गल और आत्मा जो परस्पर छिन्न हो गये हैं उन्हें समन्वित कैसे किया जाय यानी पृथ्वी पर भागवत जीवन की स्थापना कैसे हो।

श्री अरविंद कर्म और ध्यान गार्हस्थ्य और संन्यास का भेद नही मानते। उनके योग की पद्धति यह है जिससे गृहस्थ और सन्यासी दोनों का कल्याण समान रूप से हो सकता है। आरोह और अवरोह—ये दोनों क्रियाए गृहस्थ और संन्यासी दोनो के लिए उपयुक्त हैं। हम परमात्मा की ओर उन्मुख होते हैं यह आरोह यानी हमारा ऊपर उठने का प्रयास है। और हम जब ईश्वर की ओर उन्मुख होते हैं उनकी कृपा अवरोह करती है यानी नीचे उतरती है और हमारा रूपांतरण हो जाता है। जिसका आरोह जितना ही तीव्र है उस पर करुणा का अवरोह भी उसी तीव्रता से होगा।

श्री अरविंद की आध्यात्मिक योजना में अतिमानस की परिकल्पना ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सबसे अधिक दुरूह है। श्री अरविंद और श्री माता जी ने हजारो बार इसकी व्याख्या की है किंतु मन की भाषा मे हम लोग इसे न तो समझते हैं न समझा सकते हैं। एक बात स्पष्ट है कि यह उस चेतना का सर्वोच्च शिखर नहीं है जिस चेतना के साथ हमारा थोड़ा-बहुत परिचय है। अतिमानसी चेतना ही शायद कोई भिन्न प्रकार की चेतना होगी। अतिमानस की कल्पना को लेकर हम लोग जिस कठिनाई में पड़ जाते हैं उसे श्री अरविंद भली भांति जानते थे। इसीलिए सावित्री काव्य में एक जगह उन्होंने लिखा है

आत्मा की ज्योति पुद्गल में प्रदीपित होगी।
जो आज किसी को भी समझ में नहीं आता
उसे कुछ थोड़े लोग आंखों से देखेंगे।
पंडित लोग तो बहस करने और सोने ही रहेंगे

किंतु भगवान बढ़ते चले आयेंगे।
आगमन के मुहूर्त के पहले आदमी जानेगा ही
नहीं कि कोई आने वाला है।
और जब तक कार्य पूर्ण नहीं हो जाता,
मनुष्य को विश्वास नहीं होगा।[१]

१. In matter shall be lit the spirit's glow
A few shall see what none yet understands
God shall grow up while wise men talk and sleep
For man shall not know the coming till its hour
And belief shall be not till the work is done

श्री अरविंद: राष्ट्रीयता के अग्रदूत

जिस साल (सन् १८७२ ई) श्री अरविंद का जन्म हुआ उसी साल फ्रेंच भाषा के नवोदित कवि आर्थर रेम्बू ने 'इलूमिनेशंस' नामक अपनी कविता की पुस्तक प्रकाशित की थी। मगर यह घटना प्रासंगिक नहीं कही जा सकती यद्यपि आगे चलकर संसार 'इलूमिड माइंड' (प्रकाशित मन) नामक एक नया शब्द श्री अरविंद के मुख से सुनने वाला था। प्रासंगिक बात यह है कि जिस साल श्री अरविंद शिक्षा समाप्त करके भारत लौटे (सन् १८९३ ई) उसी साल विश्व धर्म-संसद में भाग लेने को स्वामी विवेकानंद ने अमरीका के लिए प्रस्थान किया और श्री मोहनदास करमचंद गांधी दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए, जहां भगवान उनके द्वारा सत्याग्रह का आदि प्रयोग करवाने वाले थे। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जिस दिन (१५ अगस्त) श्री अरविंद का जन्म हुआ था, वही दिन, ७५ वर्ष बाद जाकर भारत का स्वतंत्रता-दिवस बन गया। यह भी विचित्र संयोग की बात है कि जिस साल हम श्री अरविंद की शतवार्षिक जयंती मना रहे हैं उसी साल हमारी स्वतंत्रता की रजत-जयंती भी मन रही है।

भारत में राष्ट्रीयता का आरंभ राजनीतिक नहीं, सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में हुआ था। अंग्रेजों के शासन या कुशासन की ओर हमारा ध्यान बाद को गया। पहले तो भारत की आत्मा उस विपत्ति का ही सामना करने को जाग उठी, जो विदेशी शिक्षा और संस्कार के कारण हमारे धर्म और हमारी संस्कृति पर आन पड़ी थी। गुलामी की जंजीरों से अपनी देह को मुक्त करने की चिंता भारत को बाद में हुई। पहले उसने अपनी आत्मा की रक्षा के लिए ही विदेशी प्रभावों के खिलाफ विद्रोह किया था।

और यह स्वाभाविक भी था। हमारा देश विदेशियों के द्वारा इतनी बार रौंदा जा चुका था कि सामरिक विजय या पराजय से वह ज्यादा विचलित नहीं होता था। लेकिन धर्म और संस्कृति पर आने वाली विपत्ति को वह बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था। अपनी धार्मिक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परंपरा की रक्षा के लिए भारत ने कट्टर मुसलमानी जमाने में भी कम बलिदान नहीं दिया था। अब जब ईसाइयत और यूरोपीय बुद्धिवाद ने भारतीय संस्कृति पर आक्रमण किया, भारत की सनातन आत्मा, विचार के ऊंचे धरातल पर, उससे लड़ने को

तैयार हो गयी। यूरोपीय संस्कारो की प्रबलता ने भारत की क्या दशा कर दी थी इसका विवरण स्वयं श्री अरविद के शब्दो मे उपलब्ध है।

केवल बगाल ही नही बल्कि सारा भारत दश यूरापीय सभ्यता की शराब पीकर मदहोश हो रहा था पश्चिम से आयी हुई निरी बौद्धिक बाता पर फिदा होकर अपनी सस्कृति को भूल रहा था। भारत के लोग भी हर चीज को केवल बुद्धि से समझने केवल बुद्धि के अधूरे औजार स परखने के आदी हो रहे थे। स्थिति इतनी बिगडी कि बगाल के नौजवान नास्तिक हो गये और जो हाल बगाल का था वही घट-बढकर सारे देश का हो गया। भारत देश नास्तिको का देश हो गया संदेहवादिया का देश हो गया सनकी नौजवाना का दश हो गया।

इससे भी बुरी बात यह हुई कि जा भी भारतवासी इग्लैड जाकर वापस आये व अपने देश और अपनी सभ्यता से घृणा करने लगे। यूरोप के गुण तो उन्हाने ग्रहण किये नही हा यूरोप की विकृतियो को उन्होने बड़े शौक से अपना लिया और यहां अपने देशवासियो पर धौस जमाने के खयाल से वे भारत की आदतो रिवाजा सस्था धर्म और अध्यात्म प्रम की खिल्ली उडाने लगे। असल में वे न तो अग्रज बन सके न भारतीय रह पाये। शराब पीना गोमास खाना और उल्लग कामाचार मे मस्त रहना इन्ही आदता को अपनाकर वे अपने को यूरोप का समकक्ष मानने लगे थ। डाक्टर राधाकृष्णन् ने खूब लिखा है कि उनकी आवाज यूरोप की आवाज की प्रतिध्वनि बन गयी उनका जीवन यूरोप से लिया गया उद्धरण बन गया और उनके भीतर जो रूह थी वह बिगडकर कोरा दिमाग बन गयी। इससे भी बुरी बात यह हुई कि उनके भीतर जो स्वतंत्र आत्मा थी उसने भोग की दासता स्वीकार कर ली वह चीजो का गुलाम बन गयी।

कोई आश्चर्य नही कि जनता के हृदय पर एसा आघात लगा कि वह आधुनिकता के हर पहलू को संदेह से देखने लगी और सोचने लगी कि पाश्चात्य सभ्यता का सोना भी ग्रहण करने योग्य नही है क्योकि उसके भीतर कही-न-कही खोट जरूर होगी। अग्रेजी पढ-लिखे लोगो ने दुराचार के इतने अधिक दृष्टात उपस्थित किये कि जनता की आंखो म अग्रेजी शिक्षा ही शका की वस्तु बन गयी। उस समय अग्रेजी पढ़े लिखे लोग अपने को आधुनिक और प्रगतिशील समझते थे। किंतु उनके आचरण इतने उच्छृखल थे कि आधुनिकता भारतवासियों की दृष्टि मे बिलकुल हेय और तिरस्करणीय हो गयी। यह आघात इतना भयानक और गभीर था कि देश आज तक भी उसके प्रभाव से मुक्त नही हो सका है। जनता क अवचेतन में यह घाव इतनी अधिक गहराई में चला गया कि आज भी कोई आधुनिक वस्तु या विचार जनता के सामने आ जाय तो वह घबराने लगती है। उन्नीसवीं सदी के आधुनिकतावादियों ने यदि अपना चरित्र ठीक रखा हाता तो जनता आधुनिकता की आर चलने मे उतनी नहीं झिझकती जितनी वह आज झिझक रही है।

भारतीय जनता का अवचेतन आध्यात्मिक आदर्शो स ओत-प्रोत है। यही कारण है कि स्वेच्छा से वह साम्यवाद का भी वरण करना नहीं चाहती यद्यपि यह प्रत्यक्ष है कि हमारी जनता बहुत गरीब है और साम्यवाद का यह स्वभाव है कि गरीबों को वह धोखा कभी नहीं

देना। लेकिन सबसे बड़ा सवाल यह है कि साम्यवादी लोग नास्तिक क्यो है? व हमारी आध्यात्मिक परंपरा की निंदा क्यो करते है?

यही वह पृष्ठभूमि है जिस पर भारतीय राष्ट्रीयता को परखा जाना चाहिए। यही वह कारण है जिससे यह समझा जा सकता है कि श्री अरविंद को राजनीति मे क्या आना पड़ा। वे तो महान कवि विराट् दार्शनिक और महत्तम योगी बनने को उत्पन्न हुए थे। इससे इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि यह निर्णय करना कठिन क्यों है कि भारत को मुक्ति दिलानेवाले महापुरुष महात्मा गांधी राजनीतिज्ञ थे या संत थे। इससे दुनिया के उन लेखको को भी सबक लेना चाहिए जो भारत को उसी दृष्टि से समझना चाहते हैं जिस दृष्टि का प्रयोग वे पश्चिम के देशो को समझने के लिए करते हैं। भारत के वर्तमान और भावी शासको के लिए भी यह चेतावनी की बात है। भारतीय जनता के चिरपोषित आदर्शों के साथ अगर उन्होने खिलवाड़ किया तो जनता उसका बदला उन्ही के सिक्को में चुकायगी। और अगर उन्होने उन आदर्शों को बर्बाद करने की कोशिश की जिन्हे जनता ने बड़ी से-बड़ी मुसीबतो के समय भी सभालकर रखा है तो जनता भी शासको को बर्बाद करने से नही चूकेगी। हमे बराबर यह याद रखना चाहिए कि जैसे हिंदू धर्म अपरिभाषेय है वैसे ही भारत की भी परिभाषा नही दी जा सकती।

इतिहास मे ऐसा अनेक बार हुआ कि विदेशी जातिया और विदेशी संस्कृतियो ने भारत के धर्म और संस्कृति पर भयानक आक्रमण किये किंतु भारत हर बार उन हमलों से जूझकर साबित निकल आया। और अंग्रेजियत के हमले के बाद भी ऐसा ही हुआ। शरीर के धरातल पर तो भारत अंग्रेजों का गुलाम था किंतु आत्मा के धरातल पर वह ईसाइयत अंग्रेजियत और यूरोपीय बुद्धिवाद से डटकर लोहा ले रहा था। हमारा पहला राष्ट्रीय आंदोलन आतंकवादियो का आंदोलन नहीं था कांग्रेस का आदोलन नही था बल्कि वह सांस्कृतिक और वैचारिक आंदोलन था जिसकी उत्पत्ति ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज की प्रेरणा से हुई थी। हमारे पहले राष्ट्रीय नेता भी न तो तिलक जी थे न महात्मा गांधी न जवाहरलाल, बल्कि वे राजा राममोहन राय थे परमहंस रामकृष्ण थे स्वामी दयानंद और स्वामी विवेकानंद थे। इन नेताओं की आध्यात्मिकता प्रबल थी बौद्धिक शक्ति महान थी और आत्मबल अत्यंत प्रखर था। उन्होने अपनी सारी शक्तियो को भारत की आत्मा की रक्षा के कार्य में लगा दिया। वे हमारी श्रद्धा के अधिकारी इसलिए हैं कि जो लड़ाई उन्होने लड़ी उसमें वे जीत गये। जब विज्ञान और बुद्धिवाद का उदय हुआ संसार के प्रायः सभी देशों मे अतीत और वर्तमान के बीच संघर्ष छिड़ गया और प्रायः सभी देशों में वर्तमान जीता और अतीत हार गया। केवल भारत में वह आज भी जोरो से युद्ध कर रहा है। आधुनिकता को भारत में पैठने में कठिनाई हो रही है क्योंकि भारत आधुनिकता के उन उपकरणों को आत्मसात् करने को तैयार नहीं है जो उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं हैं। आधुनिकता अमिश्रित वरदान नहीं है। जब तक वह अपने कई दुर्गुणो से मुक्त नहीं हो जाती तब तक भारत सर्वतोभावेन उसे स्वीकार नहीं करेगा। और वह जब भारत को स्वीकार्य हो जायगी तभी वह समस्त मनुष्य-जाति के लिए वरदान मानी जायगी।

जब भारत सस्कृति के क्षेत्र मे अपनी लड़ाई लड़ रहा था और वह विजय-बिंदु के पास पहुच चुका था, तभी इस सांस्कृतिक संघर्ष से हमारी राजनीतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। लेकिन यह राष्ट्रीयता याचनापंथी और भीरु थी। उन दिनों की काग्रेस नरमदलीय लोगों के हाथ मे थी और ये नरमदलीय नेता कोई ऐसी बात बोलना नहीं चाहते थे, जिससे ब्रिटिश सरकार नाराज हो या नेताओं की पद्र-प्रतिष्ठा और सुरक्षा पर कोई खतरा आये। वे मामूली सुधारों के लिए सरकार की सेवा में दरखास्त भेजने की नीति में विश्वास करते थे तथा अपनी बात को ताकत के साथ कहने की निर्भीकता उनमें नही थी। कुछ नेता इस नियम के अपवाद भी थे। किंतु उनकी बात काग्रेस में चलती नहीं थी। ऐसे विरले नेताओं मे सबमे बड़ा नाम लोकमान्य तिलक का था, जो अपने समय के सबसे बडे आदमी थे। जनता के अतर्मन मे असंतोष था, उत्साह था, कुछ कर गुजरने की उमंग थी, लेकिन देश मे उस व्यक्ति का सर्वथा अभाव था, जो जनमानस की इस बेचैनी को समझ सके, और अभिव्यक्ति देकर उसे और धधका सके।

तब भारतीय क्षितिज पर एक पुण्यात्मा महापुरुष का उदय हुआ, जिसका चरित्र स्फटिक के समान उज्ज्वल और पवित्र था, जिसकी बौद्धिक शक्ति इतनी ऊची और महान थी कि उसका जोड़ ससार मे शायद ही कभी देखा गया हो, जो काग्रेस की राजनीति को आमूलचूल बदल डालने की उमग से उच्छल था, जो उस दरवाजे को खोलने के लिए बेचैन था, जिसके पीछे जनता का उत्साह पछाड़े खा रहा था।

यह महापुरुष श्री अरविंद घोष थे।

श्री अरविंद के पिता का नाम डॉक्टर कृष्णधन घोष था। वे विलायत मे डॉक्टरी पढकर भारत वापस आये थे। उस समय यूरोपीय सभ्यता अपनी उन्नति के शिखर पर थी। डॉक्टर कृष्णधन घोष यूरोप के इस बुद्धिवादी रूप के बड़े प्रेमी थे और चाहते थे कि भारत भी यूरोप के समान ही बुद्धिवादी और अध्यवसायी होने का प्रयास करे। वे भारत की रहस्यवादी चिंताधारा को शका से देखते थे और यह समझते थे कि धुधले रहस्यवाद का प्रेमी होने के कारण ही भारत आलसी, शिथिल और अकर्मण्य हो गया है। अतएव वे अपने बच्चों का लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा यूरोपीय ढग से करवाना चाहते थे। उनकी खास चिंता यह थी कि उनके बच्चो पर भारत की रहस्यवादी परपरा की छाया भी नही पडे। उन्होंने इस बात के लिए काफी चौकसी बरती थी कि उनके बच्चे भारत की कोई भी भाषा न सीखें और भारत की परंपरा का उन्हे तनिक भी ज्ञान नहीं हो। सात वर्ष की उम्र तक श्री अरविंद दार्जिलिंग के एक विदेशी स्कूल मे रखे गये थे और सातवे वर्ष के पूरा होते-होते पिता उन्हें इग्लैड ले गये और वहां उन्हे किसी अग्रेज परिवार मे छोड आये। चौदह वर्षों के बाद जब श्री अरविंद इग्लैड से भारत लौटे, तब उनकी उम्र इक्कीस वर्ष की थी। कहते हैं, तब तक न तो वे भारत की कोई भाषा जानते थे, न भारत की परपरा का उन्हें कोई विशेष ज्ञान था। भारत की भाषाएं सीखने का काम उन्होने तब आरभ किया, जब सन् १८९३ ई. मे वे इग्लैड से वापस आकर बड़ौदा मे रहने लगे।

श्रीमद्भगवद्गीता का अंग्रेजी अनुवाद पढने के पूर्व वे बादलेयर, मेलार्मे और रेम्बू को

मूल फ्रेंच मे पढ़ चुके थे और भारतीय साहित्य में प्रवेश करने से बहुत पहले उन्होंने अंग्रेजी फ्रेंच जर्मन इटैलियन और ग्रीक भाषाओं के साहित्य का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पीछे उन्होंने जब संस्कृत सीखी तब संस्कृत पर भी उनका ऐसा असाधारण अधिकार हो गया कि उन्होंने वेदो पर भाष्य लिखा और उपनिषदों की व्याख्याएं लिखी जिनका विद्वानो के बीच बड़ा सम्मान है।

पिता ने चाहा था कि श्री अरविंद भारतीय बिलकुल ही न बनने पाये किंतु श्री अरविंद प्रखर रूप से भारतीय बन गये। पिता ने चाहा था कि श्री अरविंद पर रहस्यवाद की कहीं से छाया भी न पड़े किंतु श्री अरविंद स्वयं उच्चतम कोटि के रहस्यवादी हो गये।

श्री अरविंद के आतरिक व्यक्तित्व के भारतीयकरण के खिलाफ जो चौकसी बरती गयी थी भगवान नहीं चाहते थे कि वह चौकसी कामयाब हो। और हुआ भी वही जो ईश्वर को मंजूर था। मेक्समूलर ने सैक्रेड बुक्स आव द ईस्ट नाम से जो अनेक पुस्तकें लिखी थीं उन्हें श्री अरविंद ने अंग्रेजी में पढ़ा और इग्लैंड प्रवास के समय ही भारत की आत्मा का एक अस्पष्ट रूप उन्हें दिखायी पड़ गया था। जब श्री अरविंद इग्लैंड में थे उस समय आयरलैंड में स्वतंत्रता का आन्दोलन चल रहा था। श्री अरविंद की इस आंदोलन के प्रति गहरी सहानुभूति थी। वे शायद यह सपना भी देखने लगे थे कि भारत लौटने पर मैं भी अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए ऐसा ही आंदोलन चलाऊंगा। श्री अरविंद ने आई सी एस की भी परीक्षा दी थी और उस परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुए थे किंतु घुड़सवारी की परीक्षा के दिन वे गैरहाजिर हो गये। ऐसा उन्होंने यही सोचकर किया होगा कि आई सी एस की नौकरी में फंस जाने पर स्वतंत्रता आंदोलन में काम करना असंभव हो जायगा।

देश भक्ति का बीज उनके हृदय में बचपन में ही अंकुरित हो चुका था। यह बात उस ऐतिहासिक पत्र से स्पष्ट हो जाती है जिसे श्री अरविंद ने सन् १९०५ ई में अपनी पत्नी को लिखा था

जब कोई दैत्य माता की छाती पर बैठकर उसका रक्त पान कर रहा हो तब बेटे का क्या कर्तव्य होना चाहिए? क्या वह निश्चिंत मन से भोजन करेगा स्त्री और बच्चों को साथ लेकर आनंद मनायेगा अथवा वह अपनी मां को दैत्य के कब्जे से छुड़ाने के लिए दौड़ेगा? मैं जानता हूं कि इस गिरि जाति का ऊपर उठाने की शक्ति मुझमें है। यह शक्ति भौतिक नहीं है कि मैं तलवार या बंदूक उठाकर शत्रु से लड़ूं। मैं तो ज्ञान की शक्ति का प्रयोग करूंगा। क्षत्रिय की शक्ति ही एकमात्र शक्ति नहीं है, शक्ति ब्राह्मण में भी होती है किंतु उसका आधार ज्ञान होता है। और यह भावना मेरे लिए नयी नहीं है। मेरा तो जन्म ही इस भावना के साथ हुआ था। यही भावना है जो मेरे जीवन का मिशन और उद्देश्य है। इसी महान ध्येय को प्राप्त करने के लिए भगवान ने मुझे पृथ्वी पर भेजा है। १४ साल की उम्र में यह भावना मेरे भीतर अंकुरित हुई थी और १८ वर्ष की आयु में तो उसकी जड़ गहराई में चली गयी और वह अभय हो गयी।

श्री अरविंद मानते थे कि राष्ट्रीयता कोई राजनीतिक आंदोलन नहीं है वह तो हमारा

धर्म है। उनका यह भी विश्वास था कि राष्ट्रीय आंदोलन के असली नेता स्वयं भगवान होते हैं। कालक्रम में जो नेता प्रकट होते हैं उनकी नियुक्ति स्वयं भगवान ही करते हैं।

बुद्धिवादियों को यह बात विचित्र-सी लगेगी और यह भी संभव है कि कुछ राष्ट्रीय आंदोलनों पर श्री अरविंद की यह उक्ति फिट नहीं बैठे। किंतु जहां तक श्री अरविंद का प्रश्न है यह उक्ति उन पर पूरी तरह लागू होती है क्योंकि श्री अरविंद का जन्म राजनीति के लिए नहीं उससे कहीं ऊंचे और महत्तर कार्य के लिए हुआ था। फिर भी भगवान ने उन्हें पांच साल की छोटी अवधि के लिए राजनीति में भेजा और फिर उन्हें एकांत में वापस बुला लिया। किंतु इन्हीं पांच वर्षों में श्री अरविंद ऐसी ऐसी निर्भीक बातें बोल गये जो उनसे पूर्व बोली नहीं गयी थीं भारत के हृदय और मस्तिष्क को उन्होंने उस तरह से मथ डाला जिस तरह वह पहले कभी भी मथा नहीं गया था और अंत में उन्होंने वह मार्ग तैयार कर दिया *जिस मार्ग से भारत का स्वतंत्रता-संग्राम आगे बढ़ने वाला था।*

यहां आकर स्वभावतः ही हमें गांधी जी की याद हो आती है। क्या महात्मा गांधी उसी मार्ग पर थे जिसका संधान श्री अरविंद ने किया था? गांधी जी ने क्या कुछ ऐसे कार्य नहीं किये जिनका खयाल श्री अरविंद को स्वप्न में भी नहीं आया होगा? श्री अरविंद के *कार्यों में कहां तक गांधी जी का पूर्वाभास था?*

जिस तरह श्री अरविंद भगवान के द्वारा नियुक्त नेता थे उसी प्रकार गांधी जी भी भगवान के द्वारा ही भेजे गये थे। जब श्री अरविंद का उदय उग्र राष्ट्रीयता की प्रज्वलित उद्दाम शिखा के रूप में हुआ गांधी जी भारतवर्ष में नहीं थे। वे दक्षिण अफ्रीका में ठीक उसी *कार्यक्रम का प्रयोग कर रहे थे जिसका आख्यान और प्रचार श्री अरविंद बंगाल में कर रहे* थे। उनका प्रयोग पैसिव रेजिस्टेंस का प्रयोग था जिसे वे सत्याग्रह कहते थे और दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी भी उसी शक्ति के खिलाफ युद्ध कर रहे थे जिसे श्री अरविंद भारत में ललकार रहे थे। गांधी जी ने सत्याग्रह का विचार श्री अरविंद से लिया था या श्री अरविंद ने गांधी जी से इस विचिकित्सा में जाना ही फिजूल है। श्री अरविंद और गांधी जी के सामने जो परिस्थिति थी वह लगभग समान थी अतएव समाधान भी दोनों को लगभग एक समान ही सूझा। लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्वदेशी आंदोलन के दिनों में श्री अरविंद ने जो कई कार्यक्रम चलाये थे १९२० में और उसके बाद गांधी जी ने उन्हीं कार्यक्रमों को जोर से चलाया और उनका विस्तार भी किया। श्री अरविंद ने जो बीज गिराये थे गांधी जी के नेतृत्व में उन्हीं बीजों से निकले हुए वृक्ष महाकार हो गये। स्वदेशी-आंदोलन के समय आजमाये गये कार्यक्रमों को गांधी जी के नेतृत्व में नये आयाम प्राप्त हुए और उनका प्रयोग सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय धरातल पर किया गया। यह भी कहा जा सकता है कि गांधी जी ने पुराने कार्यक्रमों को नया रूप दिया नयी महिमा प्रदान की और उनके भीतर नये अर्थ भी भरे। साथ ही उन्होंने कई नये कार्यक्रमों का भी आविष्कार किया।

सन् १९०५ ई. में श्री अरविंद ने अपनी पत्नी को जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने यह भी कहा था कि मेरा दृढ़ विश्वास है कि आदमी को जो भी योग्यता मिलती है प्रतिभा

और संस्कार मिलता है विद्या ज्ञान और धन प्राप्त होता है वह सब-का-सब परमेश्वर का है। हमे अपने निजी उपयोग के लिए उतना ही रखना चाहिए जो परिवार पालन के लिए नितांत आवश्यक हो जिसक बिना हमारी न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति नही हो सकती हो। बाकी सारा धन हमे भगवान को अर्पित कर देना चाहिए क्योकि उन्ही का उस पर अधिकार है। अगर मै सारी कमाई अपने क्षुद्र व्यक्तित्व पर खर्च करता हू अपने सुख और आराम में लगाता हूँ तो वास्तव मे मै चार हू।

यह विशुद्ध गाधीवादी विचार है और इसके भीतर गाधी जी के ट्रस्टीशिप वाले सिद्धान के बीज प्रभूत मात्रा मे मौजूद हैं। सभी सत कुछ मामलों मं एक ही समान सोचते हैं। गाधी जी ने अपने ट्रस्टीशिप क सिद्धात से बड़ी आशा लगा रखी थी। लेकिन उस सिद्धात पर अब कोई नही चलता यहा तक कि पब्लिक सक्टर भी नहीं जिसे सरकार अपनी चहेती सस्था मानती है।

विदशी चीजों का बहिष्कार स्वदेशी-आन्दोलन के समय भी किया गया था और गाधी जी क कार्यक्रम म भी उसका ऊंचा स्थान रहा। लेकिन पहले जो वस्तु स्वदेशी थी गांधी जी ने उसे खद्दर बना दिया। गांधी युग मं आकर राष्ट्रीय विद्यालयो और महाविद्यालयो की संख्या काफी बढ़ गयी लकिन कुछ राष्ट्रीय विद्यालय और महाविद्यालय स्वदेशी-आदोलन के समय बगाल में भी खोले गये थे। जब श्री अरविद ने बड़ौदा छोड़ा वे एक राष्ट्रीय महाविद्यालय के ही प्राचार्य बनकर कलकत्ता आये थ। लेकिन यह बात जरूर हुई कि श्री अरविंद ने जिस शक्ति का ब्राहम तेज कहा था गाधी जी ने उसे अहिसा का कठोर व्रत बना दिया। श्री अरविद का ब्राह्मतेज बिलकुल परशुरामी तेज नही तो कम-से-कम परशुराम के समीप पड़ता था। लेकिन गांधी जी ने परशुराम की जगह बुद्ध महावीर और ईसा को बिठला दिया। इवनिंग टाक्स से पता चलता है कि गाधी जी की अहिसा को श्री अरविद ने कभी भी स्वीकार नहीं किया और बराबर वे उसका मजाक उडात रहे।

अहिंसा के सिद्धांत मे श्री अरविंद का विश्वास ही नही था। नीरदबरण ने अपनी पुस्तक टाक्स विद श्री अरविंदो में श्री अरविद की एक महत्त्वपूर्ण उक्ति का उल्लेख किया है मेरा विचार तो सार देश मं खुली सशस्त्र क्रांति करन का था। लेकिन लाग उस समय जो कर बैठे वह बिलकुल बचकाना काम था जैसे मैजिस्ट्रेटो का पीटना। पीछे चलकर तो यह प्रवृत्ति आतंकवाद और डकैती की ओर चली गयी जिसकी बात मैने सोची भी नहीं थी। हम तो सार देश को जगाकर गुरिल्ला पद्धति स अंग्रेजों के साथ युद्ध करना चाहते थे जैसा आयरलैंड मं सिनफिन वालों न किया था। लकिन अभी जो सैनिक स्थिति है उसमें तो ऐसी बातें मुमकिन ही नहीं हैं और कोई तब भी साहस करे तो उसकी असफलता निश्चित है।

यही कारण था कि श्री अरविंद न हिंसा का मार्ग छोड़कर अप्रत्यक्ष अवरोध (पैसिव रजिस्टेंस) की नीति का समर्थन किया। यह भी एक प्रकार की अहिंसक नीति ही थी किंतु अहिंसा को श्री अरविंद धर्म नहीं नीति ही मानत थ। इस प्रसंग मं भी यह कहा जा सकता है कि श्री अरविंद मं गांधी जी का नहीं गांधी-युग का पूर्वाभास था क्योंकि गांधी जी तो अहिसा

वो अपना धर्म मानते थे किंतु उनके लगभग सभी सहकर्मी और अनुयायी अहिंसा को कांग्रेस की नीति ही समझते थे।

उग्र राष्ट्रीयता का व्याख्याता होने के कारण श्री अरविंद के इर्द गिर्द ऐसे नौजवान भी इकट्ठे हो गये थे जिनका विश्वास केवल हिंसा में था। इससे स्थिति यह बन गयी कि नरम दल के नेता श्री अरविंद को भी हिंसा का समर्थक मानने लगे।

नरम दल के नेता श्री गोपालकृष्ण गोखले उग्र राष्ट्रवादियों से बहुत नाराज थे। उनकी धारणा थी कि उग्र राष्ट्रवादी लोग शायद हिंसक क्रांति की तैयारी कर रहे हैं। एक बार अपने किसी लेख या भाषण में उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से यह लांछन उग्रतावादियों पर लगा भी दिया। श्री अरविंद इन्हीं उग्रतावादियों के नेता थे अतएव गोखले का खंडन करना उनके लिए अनिवार्य हो गया। गोखले को उत्तर देते हुए उस समय श्री अरविंद ने लिखा था

हमने जनता से कहा है कि चाहे जिस प्रकार का भी स्वराज्य हम चाहते हों उसे प्राप्त करने का शांतिमय साधन भी है। हमने कहा है कि अपनी सहायता आप करके यानी असहयोग (पैसिव रजिस्टेंस) के द्वारा हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि कुछ बातों में हम इस देश की सरकार के साथ तब तक सहयोग नहीं करेंगे जब तक वह चीज हम हासिल न हो जाय जिसे हम अपना अधिकार समझते हैं। दूसरी बात यह है कि अगर हम पर अत्याचार किया जायगा सरकार अगर हम पर दमन का चक्र चलायेगी तब भी उसका सामना हम हिंसा से नहीं सहनशक्ति से करेंगे असहयोग से करेंगे कानूनी तरीके से करेंगे। हमने अपने नौजवानों से यह नहीं कहा है कि जब तुम्हारा दमन किया जाय तुम प्रतिशोध से काम लो। हमने यही कहा है कि जब तुम पर अत्याचार किये जाय तुम उन्हें बर्दाश्त करो। इस देश के लोगों को हम असहयोग का मार्ग दिखा रहे हैं। यही वह एकमात्र मार्ग है जिस पर चलकर इस देश की जनता कानून का भंग किये बिना हिंसा की शरण गये बिना अपनी जायज उमंगों और उचित अभिलाषाओं को पूर्ण कर सकती है।

ऊपर के उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कल्पना सबसे पहले श्री अरविंद ने ही की थी कि असहयोग और सत्याग्रह ही इस देश में अंग्रेजों से लड़ने के सबसे कारगर हथियार हैं यद्यपि सत्याग्रह शब्द श्री अरविंद का आविष्कार नहीं है। सत्याग्रह शब्द की ईजाद करके गांधी जी ने उसके भीतर जो अर्थ भरा उसी अर्थ को संकेतित करने के लिए श्री अरविंद पैसिव रेजिस्टेंस शब्द का प्रयोग करते थे। इसलिए श्री अरविंद को भारतीय राष्ट्रीयता का पैगंबर या अग्रदूत कहना अत्युक्ति की बात नहीं है। श्री अरविंद को यह विरुद स्वयं श्री चित्तरंजन दास ने प्रदान किया था जब अलीपुर बम वाले मुकदमे में वे श्री अरविंद की ओर से पैरवी कर रहे थे।

लेकिन गांधी जी और श्री अरविंद के बीच सबसे बड़ा अंतर यह था कि गांधी जी अहिंसा को धर्म मानते थे और उसमें किसी भी तरह की मिलावट उन्हें पसंद नहीं थी। श्री अरविंद के लिए अहिंसा धर्म नहीं आपद्धर्म थी। जब श्री देवदास गांधी ने श्री अरविंद से

यह पूछा कि अहिंसा के बारे में आपका क्या विचार है तब श्री अरविंद ने एक दूसरा प्रश्न पूछकर देवदास जी को चुप कर दिया मान लो कि अफगान लोग तुम्हारे देश पर चढ़ाई कर दें तो अहिंसा से तुम उनका मुकाबला कैसे करोगे?

हृदय परिवर्तन की नीति के बारे में भी श्री अरविंद को संदेह था। वे कहते थे कि जिसे तुम हृदय परिवर्तन कहते हो वह दबाव का परिणाम है कोअर्सन का नतीजा है।

गांधी जी और श्री अरविंद के बीच समानता की एक बात यह भी है कि दोनों-के-दोनों नेता ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन चाहते थे। गांधी जी ने यह बात अपनी आत्मकथा या किसी लेख में लिखी है आइ वांट टू सी गाड फेस टू फेस। और यही बात श्री अरविंद ने अपनी पत्नी को पत्र में लिखी थी।

गांधी जी को भारत की स्वाधीनता का मुख्य निर्माता घोषित करके इतिहास ने न्याय और औचित्य का ही पालन किया है। लेकिन स्वतंत्रता के युद्ध मे श्री अरविंद का योगदान भी प्रायः समान महत्व का योगदान था। कांग्रेस तो दरख्वास्त भेजकर सरकार से भीख मांगनेवाली संस्था थी। उसकी इस भीरु नीति को हटाकर उसके भीतर वीरता का भाव भरने का आंदोलन श्री अरविंद ने ही चलाया था। वही आंदोलन गांधी जी के आगमन के साथ सफल हो गया और कांग्रेस मिमियाने वाली संस्था से बढ़कर गरजनेवाली संस्था बन गयी। दूसरी बात यह है कि भारत का लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य होना चाहिए इस ध्येय की भी घोषणा और परिभाषा सबसे पहले श्री अरविंद ने ही की थी। किंतु यह ध्येय भी गांधी युग मे कोई दस वर्ष तक हवा में मंडराता रहा नौजवानों के दिलों में सुलगता रहा। अंत में सन् १९३० ई में कांग्रेस ने उसे तब स्वीकार किया जब युवकहृदय-सम्राट पं जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के सभापति हुए।

सन् १८९३ ई में श्री अरविंद की उम्र कुल इक्कीस वर्ष की थी और वे तुरत इंग्लैंड से वापस आये थे। लगता है इंग्लैंड में रहते समय ही श्री अरविंद के भीतर यह बेचैनी शुरू हो गयी थी कि भारतीय कांग्रेस की नीति ठीक नहीं है। अतएव सारे देश को जगाकर उस पूर्ण स्वतंत्रता का ध्येय बताकर कांग्रेस को निर्भीक देशभक्तों की संस्था बनाना आवश्यक है। अभी भारत आये उन्हें केवल छह मास हुए थे कि बंबई के इंदुप्रकाश में उन्होंने पुराने दीपों की जगह नये दीप नाम से एक लेखमाला आरंभ कर दी जिसमें कांग्रेस और उसके तत्कालीन नेताओं की कठोर और निर्भीक आलोचना थी। इन लेखों को पढ़कर कांग्रेस के नेता डरने और घबराने लगे। जस्टिस महादेव गोविंद रानाडे ने इंदुप्रकाश के प्रकाशक से कहा कि अगर ऐसे लेख तुम छापते रहे तो एक-न-एक दिन मुसीबत में फंस जाओगे। निदान इंदुप्रकाश ने उस लेखमाला का छापना बंद कर दिया। इस लेखमाला के एक लेख में श्री अरविंद ने लिखा था कि कांग्रेस के बारे में मुझे यह कहना है कि इसके उद्देश्य गलत हैं और जिस भाव से कांग्रेस उन उद्देश्यों की ओर बढ़ना चाहती है वह सचाई और ईमानदारी का भाव नहीं है। कांग्रेस ने इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जो तरीके चुने हैं वे तरीके भी गलत हैं और जिन नेताओं में कांग्रेस का विश्वास है वे नेता भी सही किस्म के नेता नहीं हैं।

जिस कांग्रेस को हम राष्ट्रीय कहते हैं वह न तो राष्ट्रीय है न राष्ट्रीय बनने के प्रयास में है।

श्री अरविंद ने यह भी लिखा था कि जो कांग्रेस जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती केवल एक और वह भी सीमित वर्ग की नुमायन्दगी करती है उसे राष्ट्रीय कहना किसी भी तरह ईमानदारी की बात नहीं है। हमारे सामने जो परिस्थिति खड़ी है उसकी असली कुंजी सर्वहारा के पास है। जो सर्वहारा आज अज्ञान के अंधकार और मुसीबत में पड़ा है वही हमारी *एकमात्र आशा और आश्वासन है वही हमारे भविष्य का अवलंब है।*

यह शायद पहली बार था जब हमारे देश की राजनीति में सर्वहारा यानी प्रोलेतेरियत शब्द का उल्लेख किया गया था।

अपने लेखों के द्वारा श्री अरविंद ने एक-पर-एक जो अनेक बम फेंके उनके चलते देश की जड़ता और निष्क्रियता की जड़ें हिल गयीं और जो निर्भीक विचार उन्होंने प्रकट किये उनसे उग्र राष्ट्रीयता का भाव आप से-आप उभरने लगा। श्री अरविंद के निर्भीक विचारों का प्रभाव यह भी हुआ कि जो भी नौजवान निर्भीक होकर सोचते थे वे परस्पर समीप आने लगे और देश में नरम दलीय लोगों के खिलाफ एक गरम दल तैयार होने लगा। नरम दल पर इस गरम दल की निर्णायक जीत तब हुई जब कांग्रेस गांधी जी के नेतृत्व में आयी और गरम दल के कारवां को आगे बढ़ते देखकर नरम दल के नेता कांग्रेस से अलग हो गये।

जहां तक सेक्युलरिज्म की बात है मेरा खयाल है गांधी जी उस शब्द के कोषगत अर्थ के अनुसार सेक्युलर नहीं थे क्योंकि सेक्युलर शब्द का अर्थ अध्यात्म विरोधी होता है। हम ज्यादा-से ज्यादा यही कह सकते हैं कि व सभी धर्मों को समान समझते थे बल्कि उन्हें अपना ही धर्म मानते थे। किंतु श्री अरविंद की राजनीति सेक्युलर नहीं आध्यात्मिक थी। अपने लेखों और भाषणों में वे खुलकर कहते थे कि राष्ट्रीय आंदोलन के नेता भगवान हैं। वे यह भी कहते थे कि भारत के सनातन धर्म को अपनी ही रोशनी से चमकना चाहिए और उस पर हमें पाश्चात्य जगत के विचारों और योजनाओं के बादलों को छाने नहीं देना चाहिए। सन् १९२० ई में जोसेफ बैपटिस्टा के पत्र के उत्तर में उन्होंने लिखा था कि *मेरे लिए सेक्युलर नाम की कोई चीज नहीं है। मनुष्य की सभी चेष्टाओं को मैं आध्यात्मिक* जीवन में समाहित करना चाहता हू और अभी तो राजनीति की आवश्यकता सबसे प्रधान है।

सन् १९०४ ई में श्री अरविंद ने भवानी मंदिर का घोषणा पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने कहा था कि भारत का विनाश नहीं होगा क्योंकि मनुष्य जाति की नाना शाखाओं में से भारत ही सबसे प्रधान है और मनुष्य जाति की जो सबसे बड़ी नियति है सबसे गौरवपूर्ण *ध्येय है उसे भारत ही चरितार्थ करेगा। समस्त संसार अपना भावी धर्म भारत से ही प्राप्त* करेगा और वही धर्म विभिन्न धर्मों दर्शनों और विज्ञान को समन्वित करके मनुष्य जाति को एक बनायेगा।

उस घोषणा पत्र में श्री अरविंद ने यह भी कहा था कि भारत में जब भी शक्ति का

उदय हुआ है उसका स्रोत धार्मिक जागरण रहा है। जब-जब इस देश में धर्म की पूरी जागृति हुई तब-तब यह देश शक्ति-संपन्न हुआ है और जब जब धर्म की जागृति में कमी रही है हमारी राष्ट्रीय शक्ति भी क्षीण रही है। अगर अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए हम विदेशी तरीकों का इस्तेमाल करेंगे हमारी प्रगति धीमी रहेगी कष्टपूर्ण रहेगी अधूरी रहेगी और हम अपने ध्येय तक पहुंच भी नहीं पायेंगे तब हम उस मार्ग को क्यों नहीं पकड़ें जिसे भगवान ने हमारे लिए प्रशस्त कर रखा है?

ससार मे आध्यात्मिक क्रांति लाने का जो दर्शन श्री अरविंद ने आगे चलकर तैयार किया उसके बीज भवानी मंदिर की योजना में मौजूद थे।

श्री अरविंद सेक्युलर नहीं आध्यात्मिक नेता थे और भारत के राजनीतिक आंदोलन को भी वे आध्यात्मिक मार्ग पर चलाना चाहते थे क्योंकि उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत को इसलिए स्वाधीन होना है कि वह सारी मानवता को अध्यात्म का सदेश पहुंचा सके।

किंतु भारत का स्वाधीनता-आंदोलन अतत उस मार्ग पर नहीं रहा जिसकी कल्पना तिलक और श्री अरविंद ने की थी अथवा जो स्वयं गाधी जी को पसद था। सन् १९३८ ई के दिसबर महीने मे श्री अरविंद ने कहा था भारतवर्ष अब यूरोपीय समाजवाद की ओर जा रहा है जो उसके लिए खतरनाक है। हम लोग भारत की प्रकृति और शक्ति को भारतीय पद्धति मे जगाना चाहते थे। उस समय जो चीज जागी थी वह भारत की आत्मा थी और उसने बड़े-बड़े व्यक्तियों को उत्पन्न किया था। उस समय भारतीय आंदोलन के नेता या तो योगी थे या योगियों के शिष्य थे।

२९ सितंबर १९०५ ई के दिन बंगाल का विभाजन कानून का तथ्य बन गया और इस कानून के विरोध में सारा बंगाल एक होकर विद्रोह कर उठा। जैसे-जैसे जनता के भीतर क्रांति का जोश बढ़ा वैसे ही-वैसे सरकारी दमन-चक्र की भीषणता भी बढ़ने लगी। उस आंदोलन के दौरान जो राष्ट्रीय कार्यक्रम चालू किया गया उसमे स्वदेशी राष्ट्रीय शिक्षा और विदेशी माल के बहिष्कार का प्रमुख स्थान था। इन्हीं कार्यक्रमो के अधीन कलकत्ते में एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खोला गया तथा सन् १९०६ ई में श्री अरविंद अतिम बार बड़ौदा छोड़कर इस महाविद्यालय के प्राचार्य-पद को सुशोभित करने के लिए कलकत्ता आ गये।

प्राचार्य का काम केवल निमित्त मात्र था। वास्तव मे कलकत्ता पहुंचते ही श्री अरविंद उग्र राष्ट्रवादियों के कर्णधार बन गये। उन्हीं दिनो श्री विपिनचंद्र पाल ने वंदेमातरम नाम से एक दैनिक पत्र निकाला था। इस पत्र के साथ श्री अरविंद का प्रगाढ़ सहयोग भारतीय इतिहास को प्रभावित करने वाली महान घटना बन गया। वंदेमातरम् के स्तम्भों के द्वारा श्री अरविंद देश की सोयी हुई शक्ति को इस प्रखरता से जगाने लगे जिस प्रखरता से वह पहले कभी भी जगायी नहीं गयी थी देशभक्ति और राष्ट्रीयता के भावों को इस तरह उभारने लगे जैसे वे पहले कभी भी उभारे नहीं गये थे। श्री अरविंद का नाम तो वंदेमातरम् में छपता नहीं था किंतु वह पत्र ही बंगाल में राष्ट्रीय आंदोलन का नेता बन गया और उसका प्रभाव

गाल तक ही सीमित न रहकर सारे देश में फैलने लगा। वदेमातरम् के भीतर आरभ से ही ी अरविद का हाथ था। इस पत्र की निर्भीक नीति प्रखर चितन स्पष्ट विचार निर्दोष और क्तिशालिनी शैली तिलमिला देनेवाले व्यग्य और शिष्ट मजाक ऐस थे जिनसे टक्कर ने की शक्ति ऐग्लो इडियन अखबारो मे भी नही थी। कोई आश्चर्य नही कि दो चार हीनों म ही श्री अरविद कुछ छात्रो के ट्यूटर के पद से उठकर सारे देश के महाशिक्षक और ता बन गय।

श्री अरविद की शक्तिशालिनी निर्भीक और प्रेरणादायिनी लेखनी के प्रताप से देमातरम् जाग्रत् और उदयशील राष्ट्र का प्रवक्ता बन गया। समकालीन समस्याओ से झते जूझते उसने देश मे नये योद्धाओं की एक पूरी पीढी ही उत्पन्न कर दी। इस पीढी न वतत्रता सग्राम में डटकर भाग लिया और अत मे देश को स्वाधीन करने का भी श्रेय इसी ाढी को प्राप्त हुआ।

वदेमातरम् के स्तंभो द्वारा श्री अरविद ने बहुत शीघ्र सारे देश को जगा दिया उसके ीतर प्रेरणा भर दी और उसे उठाकर अपने पावो पर खडा कर दिया। देश के करोडा ा शस्त्र एव दुर्बल मानवो के भीतर श्री अरविद ने आत्मविश्वास की भावना जगा दी। वे पनी स्वत्व प्राप्ति के लिए बेचैन हो उठे एवं उनका आक्राश श्री अरविद के भीतर रे ाक्त होने लगा। वदेमातरम् मे श्री अरविद के जा लेख प्रकाशित हुए उनसे श्री अरविद क ई रूपो पर प्रकाश पडता है। वे भारत की जागृति के पैगबर थे वे मूक और निरीह जनता प्रवक्ता थे वे क्राति के पावरहाउस और उग्र राष्ट्रवादियो के सिपहसालार थ।

चूकि श्री अरविद का नाम उनके किसी भी लेख क साथ नही छपता था इसलिए रकार यह जानन का व्याकुल थी कि आखिर कौन यह लेखक है जो इतनी आग उगल रहा और ऐसी खूबी के साथ कि उसे कानून के शिकजे मे भी लाना मुश्किल है। लेकिन अन म रकार के गुप्तचरो ने परद को उठा दिया और सरकार का यह मालूम हा गया कि ये लेख ौर किसी के नही श्री अरविद के हैं।

इसलिए अगस्त १९०७ ई में सरकार न श्री अरविद का गिरफ्तार कर लिया। ंतु अभियोग चूंकि सिद्ध नही हो सका श्री अरविद छोड दिये गये। लेकिन इस मुकदमे ने श का एक बड़ा भारी उपकार कर दिया। लोग समझ गये कि वदमातरम् के भीतर से श्री रविद ही देश को झकझोर रहे थे। सो क्षणमात्र मे श्री अरविद का नाम सारे देश म गूज गया ौर जनता उनकी पूजा करने लगी। देश के काने काने से प्रशसा प्रम श्रद्धाजलि और शस्ति की धारा श्री अरविद की ओर दौडने लगी। यह घटना इतनी ऐतिहासिक और ाटकीय थी कि देश क सबसे बडे जीवित कवि श्री रवीद्रनाथ ठाकुर उससे अनुप्रेरित हा उठे ौर अरविद लहा रवीद्रर नमस्कार शीर्षक से श्री अरविद पर उन्होने एक काफी लबी विता रच डाली। और अग्रेजी क एक अखबार ने श्री अरविद का अभिनन्दन रते हुए लिखा

जा लाग क्षण भर की तितली हैं सुविधा और सुरक्षा के गुलाम हैं उन्ह अगर श्री रविंद क बगल म खड़ा कर दिया जाय तो ये लोग कितने छाटे और दयनीय

नजर आयेंगे?

जब श्री अरविंद बड़ौदा में थे उनकी मुलाकात एक योगी से हुई थी जिनका नाम श्री भास्कर लेले था। लेले जी ने श्री अरविंद को मन शांति की क्रिया बतायी। श्री अरविंद का मन तीन दिनों की साधना में ही परिशांति की अवस्था को पहुंच गया। कहते हैं श्री अरविंद जहां भी जाते थे पारखी उस शांति का अनुभव करते थे जो उनकी आकृति से निःसृत होती थी। पारखियों को उस उच्चावस्था का भी बोध होता था जहां से श्री अरविंद के प्रवचन शांतिमय गति से प्रवाहित होते थे। सार्वजनिक सभाओं में वे पेशेवर राजनीतिज्ञ की तरह नहीं बोलते थे राजपुरुष के समान भी नहीं बोलते थे उनका भाषण पैगंबर की शैली में होता था धर्म के रहस्यज्ञाता की शैली में होता था। उदाहरणार्थ एक भाषण में उन्होंने कहा था राष्ट्रीयता धर्म है जो भगवान के यहां से आया है। इस धर्म के द्वारा हम पूरे राष्ट्र में अपने सभी देशवासियों के भीतर भगवान के स्वरूप का दर्शन करना चाहते हैं हम इस प्रयास में हैं कि अपनी तीस करोड़ जनता के रूप में हम ईश्वर-दर्शन की अनुभूति प्राप्त कर सकें।

इसे पढ़कर ऐसा लगता है मानो हम स्वामी विवेकानंद की वाणी सुन रहे हों जो पहले ही स्वर्गीय हो चुके थे, मानो हम गांधी जी की आवाज सुन रहे हों जो दस साल बाद पधारने वाले थे।

उग्र राष्ट्रवाद का जो व्यापक प्रचार श्री अरविंद ने किया उसके चलते कांग्रेस भीतर-ही भीतर दो दलों में विभक्त होने लगी। जहां तक नरम दल का संबंध था उसके नेता सर फिरोजशाह मेहता गोपाल कृष्ण गोखले सुरेंद्रनाथ बनर्जी और रासबिहारी घोष के समान बड़े बड़े लोग थे। उग्रवादियों के बड़े नेता लोकमान्य तिलक लाला लाजपतराय और श्री अरविंद थे। उग्रवादी इस कोशिश में थे कि कांग्रेस को नरम दलीय नेताओं के नेतृत्व से मुक्त करके उसे अपने कब्जे में ले लिया जाय। १९०७ ई के दिसंबर महीने में सूरत में जो कांग्रेस हुई उसमें दोनों दलों के बीच मुठभेड़ हो गयी। जाहिरा प्रश्न यह था कि कांग्रेस का सभापति कौन हो लोकमान्य तिलक या रासबिहारी घोष? किंतु वास्तव में यह संघर्ष दो विचारधाराओं के बीच था। राष्ट्रवादी नौजवान इस तैयारी के साथ सूरत गये थे कि अगर कांग्रेस पर हम कब्जा नहीं कर सके तो हम उसे तोड़ देंगे। लेकिन तिलक जी और लाजपतराय को यह बात मालूम नहीं थी। लाजपतराय तो इस विचार के थे कि नरम दलवालों को साथ लेकर ही कांग्रेस को चलाया जाय नहीं तो राष्ट्रवादियों को सरकार की भयानक दमन नीति का सामना करना पड़ेगा। किंतु जब नरम दलवाले थोड़ा भी झुकने को तैयार नहीं हुए दोनों दलों के बीच झगड़ा हो गया जिसमें लोगों ने एक-दूसरे पर कुर्सियां फेंककर प्रहार किये। अब यह बात निश्चित-सी हो गयी है कि कांग्रेस को तोड़ डालने का आखिरी फैसला श्री अरविंद का ही था।

लाला लाजपतराय की आशंका वृथा नहीं थी। जब सरकार ने देखा कि उग्रवादी बड़े जोश में हैं और उन्होंने नरम दलवालों की बोलती बंद कर दी है वह राष्ट्रवादियों का दमन करने पर उतारू हो गयी। तिलक जी पर मुकदमा चलाया गया और वे जेल भेज दिये गये तथा

लाला लाजपतराय को देशनिकाला में जाना पड़ा।

जैसे जैसे जन जागृति गहराई में पहुंचने लगी जनता की ओर से की जानेवाली स्वराज्य की मांग तेज होने लगी और सरकार की दमन-नीति की कठोरता भी बढ़ने लगी। सरकार की दमन नीति इतनी विकराल हो उठी कि भारतवासी तो क्या लंदन में रहनेवाले भारतसचिव भी घबरा उठे। उन्होने वायसराय को एक पत्र लिखकर कहा

हमें भारत में शांति बनाये रखने का प्रयास अवश्य करना चाहिए किंतु कठोरता की अति का मार्ग शांति का मार्ग नहीं है। उलटे वह बम का मार्ग है।

और सचमुच ही देश में रह रहकर बम के धड़ाके होने लगे और इन धड़ाकों से जहां जनता के भीतर आशा का उदय होने लगा वहां सरकारी हल्कों में भय और कंपकंपी समा गयी।

आखिर को १० अप्रैल १९०८ के दिन खुदीराम बोस नामक एक बाल क्रांतिकारी ने मुजफ्फरपुर (बिहार) में बम फेंककर दो निर्दोष महिलाओं को मार डाला। खुदीराम जिस अंग्रेज जज को मारने के लिए मुजफ्फरपुर गया था वह जज तो बच निकला लेकिन दो अंग्रेज महिलाओं के प्राण चले गये जिन्हें मारना खुदीराम का लक्ष्य नहीं था। फिर क्या था सरकार अचानक बौखला उठी और वह अंधाधुंध नौजवानों को गिरफ्तार करने लगी। श्री अरविंद के भाई वारींद्र घोष नामी क्रांतिकारी थे। सरकार ने उन्हें इसलिए गिरफ्तार कर लिया कि उनका संबंध कलकत्ते में बम बनाने वाले किसी संगठन से पाया गया था। और चूंकि वारींद्र श्री अरविंद के भाई थे इसलिए सरकार ने ५ मई १९०८ को श्री अरविंद को भी गिरफ्तार कर लिया और वे अलीपुर जेल में बंद कर दिये गये जहां मुलज़िम के रूप में उन्हें पूरे एक साल तक रहना पड़ा।

श्री अरविंद तथा अन्य नवयुवकों के खिलाफ जो मुकदमा चलाया गया वह इतिहास में अलीपुर बम केस के नाम से विख्यात है। उस मुकदमे की तफसील में जाना यहां अनावश्यक प्रतीत होता है। उल्लेखनीय बात यह है कि यह मुकदमा श्री अरविंद के लिए वरदान सिद्ध हुआ और एक वर्ष तक अलीपुर जेल में रहते रहते भीतर से उनके व्यक्तित्व का संपूर्ण रूपांतरण हो गया। कहते हैं इस कारावास में श्री अरविंद को भगवान वासुदेव का साक्षात्कार हुआ और उन्होने श्री अरविंद से अंतर्ध्वनि की भाषा में कहा कि इस मुकदमे से तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा क्योंकि तुमसे मुझे कोई और काम लेना है जो राजनीति से कहीं ऊंचा और महान है।

विवरणों से पता चलता है कि अलीपुर जेल में श्री अरविंद जब ध्यान करते थे तब स्वामी विवेकानंद की आत्मा उनसे बात करती थी। संबुद्ध मन और अतिमानस तक पहुंचने का मार्ग श्री अरविंद को स्वामी विवेकानंद ने ही बताया था।

जेल में श्री अरविंद के साथ जो आध्यात्मिक घटना घटी उससे हम यही अनुमान लगा सकते हैं कि भगवान ने अब श्री अरविंद को राजनीति से अलग कर लेने का निश्चय कर लिया था।

यह मुकदमा बड़ा ही सनसनीखेज था। उसकी चर्चा सारे देश में हो रही थी और विदेश

के मारे सारी जनता सांस साधकर इंतजार कर रही थी कि देखें श्री अरविंद का क्या होता है। श्री अरविंद जनता के वरेण्य धीर हृदय सम्राट और देवता हो गये थे। सारा देश उन पर प्राण न्योछावर करने को तैयार था। श्री अरविंद के वकील श्री चितरंजन दास थे। उनकी बहस पूरे आठ दिनों तक चली थी। यह बहस भी वक्तृत्वकला का उच्चतम दृष्टांत थी। किंतु उसका अद्भुत और अमर अंश वह संदर्भ है जिसमें श्री सी आर दास ने जज की विवेक-बुद्धि को जगाते हुए कहा था

मेरी अपील यह है कि इस विवाद के पूर्ण रूप से शमित हो जाने के बहुत बाद खलबली अशांति और आंदोलन के खत्म हो जाने के बहुत बाद स्वयं श्री अरविंद के मृत और गत हो जाने के बहुत बाद श्री अरविंद देशभक्ति के कवि राष्ट्रीयता के पैगंबर और मानवता के प्रेमी के रूप में याद किये जायेंगे। उनके मृत और गत होने के बहुत बाद उनके शब्दों की ध्वनि और प्रतिध्वनि केवल भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि समुद्रों के आरपार सारे संसार में गूंजेगी। इसलिए मेरा निवेदन है कि श्री अरविंद केवल इस अदालत के सामने नहीं बल्कि इतिहास के हाइकोर्ट के सामने खड़े हैं।

जूरी ने एकमत होकर निर्णय दिया कि श्री अरविंद निर्दोष हैं और तदनुसार वे मई १९०९ ई में जेल से छोड़ दिये गये।

जब श्री अरविंद जेल से बाहर आये उन्हें यह देखकर निराशा हुई कि जनता के भीतर जो उत्साह उन्होंने संचारित किया था वह ठंडा पड़ गया है और वातावरण एक प्रकार की बेचैन शांति से बोझिल है। अपने उत्तरपाड़ा वाले सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने कहा

जब मैं जेल गया था उस समय सारे देश में वंदेमातरम् की पुकार गूंज रही थी और देश जीवित तथा सप्राण मालूम होता था। देश के करोड़ों लोग जड़ता और पतनशीलता के गर्त से जागकर उठ खड़े हुए थे और सारा देश आशा और उमंग की तरंग में था। जब मैं जेल से बाहर आया मैंने कान लगाया कि वंदेमातरम् की पुकार कहीं से आती है या नहीं। लेकिन कहीं कोई पुकार नहीं थी चारों ओर केवल मनहूस शांति थी। देश के ऊपर निस्तब्धता छा गयी है और लोग किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहे हैं।

स्पष्ट है यह सरकार की दमन नीति का परिणाम था। जैसा उसका स्वभाव है दमन की नीति थोड़ी देर के लिए कामयाब हो गयी थी। श्री अरविंद ने जनता को धीरज बंधाते हुए कहा

दमन का चक्र और कुछ नहीं भगवान के हाथ का हथौड़ा है। इस हथौड़े से पीटकर वे हमें एक आकार दे रहे हैं हमें एक राष्ट्र के रूप में तैयार कर रहे हैं जिसका इस्तेमाल संसार में भगवान के कार्य के लिए किया जा सके।

जेल से बाहर आकर श्री अरविंद ने अंग्रेजी में कर्मयोगी और बंगला में धर्म नाम से दो अखबार निकाले। इन पत्रों का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रवादी दल का पुन संगठन था क्योंकि वह दल टूटकर बिखरा जा रहा था। लेकिन इन पत्रों का सारा धरातल केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं था अक्सर वह उठ-उठकर अध्यात्म की ऊंचाई को छूने

हागा था। यह इस बात का प्रमाण था कि सपादक का व्यक्तित्व अब राजनीति और योग दोनों ही दिशाओं में काम कर रहा है।

अपने उत्तरपाड़ा वाले भाषण मं श्री अरविंद न कहा था कि जब मैं जल मं था स्वयं वासुदेव ने मुझसे कहा था राष्ट्र क भीतर मैं विराजमान हू उसकी हलचल क भीतर स भी मैं ही काम कर रहा हूं। जा मै चाहूंगा वही हागा दूसरा का चाहा हुआ कभी नहीं हागा। जा परिवर्तन मैं लाना चाहता हू मनुष्य की काई भी शक्ति उस राक नहीं सकगी।

ऐसा लगता है कि जब श्री अरविंद जल स बाहर आय थ उन्हें इस प्रकार का काई आभास मिल चुका था कि अब उन्हें राजनीति का छाड़कर अपना सारा ध्यान याग पर कंद्रित करना होगा। क्याकि जेल में उन्हाने भगवान की आवाज सुनी थी कि यह नयी पीढ़ी है यह नया शक्तिशाली राष्ट्र है जा मेरे आदश स खड़ा हा रहा है। य लाग तुमस बड़े हैं। तुम डरते किस बात से हो? अगर तुम मैदान से हट जाआ या सा रहा काम तब भी पूरा हा कर रहेगा।

कर्मयोगी वैसे तो राजनीतिक पत्र था किंतु श्री अरविंद क आध्यात्मिक विचारा की प्रतिध्वनि उसके भीतर से बार-बार सुनायी देती थी।

हमारा विश्वास है कि भारत इसलिए उठ रहा है कि याग का वह मानव जीवन के आदर्श के रूप मे प्रतिष्ठित कर सक। याग के द्वारा ही भारत का अपनी स्वतंत्रता अपनी एकता अपनी महिमा की अनुभूति होगी। और याग क द्वारा ही भारत यह शक्ति प्राप्त करेगा कि वह अपनी स्वतंत्रता एकता और महत्ता की रक्षा कर सके। आने वाली जा चीज हम दिखायी पड़ती है वह आध्यात्मिक क्रांति है। भौतिक उन्नति ता उसकी छाया मात्र है।'

वे यह भी अनुभव करने लगे थे कि देश में जिन समाज-सुधारों का प्रचार किया जा रहा है वे केवल यांत्रिक परिवर्तन हैं। जब तक आत्मा मे परिवर्तन नहीं होगा मुसीबत और पतनशीलता खत्म नहीं होगी। परित्राण तो केवल आत्मा करता है। जब तक हमारा हृदय मुक्त और महान नही होगा हम सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि मे भी मुक्त नहीं होंगे।

यह उक्ति उस स्वप्न की दूरस्थ भूमिका जैसी लगती है जिसका आख्यान श्री अरविंद आगे चलकर अतिमानस के प्रसग मे करनवाले थे।

१९०९ ई के जुलाई महीने में कलकत्त मे गर्म अफवाह फैलने लगी कि सरकार श्री अरविंद से बिलकुल ही तग आ गयी है और उसने निश्चय कर लिया है कि श्री अरविंद को देश से निकाल दिया जाय। इससे श्री अरविंद को कुछ भी घबराहट नही हुई लेकिन अफवाह का विश्वास करके उन्होंने आनेवाली विपत्ति से जूझने की तैयारी शुरू कर दी। इसी मनोदशा में उन्होंने अपने देशवासियो के नाम खुला पत्र लिखा जिसमे उन्होने अगर मुझे देश निकाला दिया जाय तथा अगर मै वापस न आ सकू आदि कई अर्थ पूर्ण वाक्यांशो का प्रयोग किया। इस पत्र को श्री अरविंद ने देशवासियों के नाम मेरी अंतिम राजनीतिक वसीयत की सज्ञा दी और जनता से उन्हाने कहा

सभी महान आंदोलन ईश्वर के द्वारा भेजे जाने वाले अपने नेता की प्रतीक्षा करते हैं। वह नेता भगवान की शक्ति का तत्पर स्रोत होता है। जब ऐसे नेता पहुच जाते हैं तभी आंदोलनों को सफलता मिलती है। चूंकि राष्ट्रवादी दल देश के भविष्यत् का धातीदार है इसलिए उसे उस नेता की राह देखनी चाहिए जो आने वाला है।

इतिहास ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि जिस नेता के आगमन की श्री अरविंद ने भविष्यवाणी की थी वह नेता स्वयं महात्मा गांधी थे। यह दु ख की बात है कि इन दो महान नेताओं की कभी भेंट भी नहीं हो सकी।

फरवरी १९१० में श्री अरविंद ने कलकत्ता छोड दिया और वे पास के ही फ्रांसीसी उपनिवेश चंदरनगर चले गये। समझा यह जाता है कि श्री अरविंद ने ऐसा इसलिए किया कि भगिनी निवेदिता से उन्हें यह पता चल गया था कि सरकार इस बार श्री अरविंद को पकड़कर देश से बाहर कर देना चाहती है और श्री अरविंद सरकार की इस कुत्सित योजना को विफल कर देने को कटिबद्ध थे। और सचमुच ही जब श्री अरविंद कलकत्ते से बाहर निकल गये सरकार ने उनके खिलाफ मुकदमा दायर कर दिया। श्री अरविंद के खिलाफ दायर किया जाने वाला यह तीसरा मुकदमा था लेकिन सबूत के अभाव में वह भी खारिज हो गया।

अंत में अंतर्ध्वनि से या ऊपर से आदेश पाकर श्री अरविंद ने चंदरनगर को भी छोड़ दिया और वे पांडिचेरी के लिए रवाना हो गये जो उस समय फ्रांस के ही अधिकार में था। पांडिचेरी में श्री अरविंद ५ अप्रैल १९१० को पहुचे और फिर मृत्यु पर्यंत वहीं रह गये। पांडिचेरी में उन्होंने योग साधना की कविताएं लिखीं दर्शन और बडे-बडे निबंध लिखे तथा मानवता के इतिहास में उन्होंने अपने को अमर कर दिया।

जब श्री भास्कर लेले ने श्री अरविंद से योग धारण करने को कहा था उस समय श्री अरविंद ने जवाब दिया था कि कविता और राजनीति से मुझे बेहद प्यार है। योग मैं तभी कर सकता हूं जब कविता और राजनीति के साथ वह कोई हस्तक्षेप नहीं करे। किंतु अंत में श्री अरविंद ने योग के लिए राजनीति का त्याग कर दिया यद्यपि कविता वे तब भी करते रहे।

अनेक बार यह शका उठायी जाती है कि श्री अरविंद ने अचानक राजनीति को क्यों त्याग दिया? राजनीति का त्याग कहीं उन्होंने यह सोचकर तो नहीं किया कि अंडमान की कालकोठरी में आजीवन सड़ने की बजाय यह कहीं श्रेष्ठ है कि एकांत में बैठकर कविता लिखी जाय योग-साधना की जाय और मानवता के उद्धार का कोई आध्यात्मिक मार्ग ढूंढा जाय।

इस अनुमान में कुछ ताकत जरूर दिखायी देती है। किंतु श्री अरविंद की कठोर तपस्या उनकी विराट उपलब्धि और उनके जीवनव्यापी अध्यवसाय के सामने यह अनुमान हास्यास्पद मालूम होता है। श्री अरविंद जीवन से भागने वाले पुरुष नहीं थे न वे जिंदगी से हार कर पांडिचेरी में शरण खोजने गये थे। उनका योग नकारात्मक नहीं स्वीकारात्मक था। भगवान ने श्री अरविंद का उपयोग पहले भारतीय जीवन की जड़ता को तोड़ने के लिए किया

और जब यह कार्य संपन्न हो गया उन्होंने किसी और बड़ी साधना के लिए श्री अरविंद को एकांत में खींच लिया। अलीपुर जेल में कोई-न-कोई चमत्कार अवश्य घटित हुआ होगा जिससे श्री अरविंद इस निष्कर्ष पर आ गये कि राजनीति को साथ रखकर योग-साधना नहीं की जा सकती अतएव योग के लिए अब राजनीति का त्याग ही उचित है।

सन् १९२० ई. में जब कांग्रेस ने सरकार से असहयोग करने का निश्चय किया श्री अरविंद के एक शिष्य श्री दोराई स्वामी ऐयर ने श्री अरविंद से पूछा कि आपके बिना भारत का स्वाधीनता-संग्राम कैसे चलेगा? श्री अरविंद का उत्तर था मैंने भगवान से यह आश्वासन पा लिया है कि भारत स्वतंत्र हो जायगा। अगर यह आश्वासन मुझे नहीं मिला होता मैं राजनीति को हरगिज नहीं छोड़ता। योग मैंने परमेश्वर के आदेश से धारण किया है।'

दिसंबर सन् १९१८ ई. में श्री अंबालाल पुराणी श्री अरविंद से मिलने को पांडिचेरी गये थे। उन्होंने श्री अरविंद से कहा कि हमारी क्रांति की तैयारी पूरी हो चुकी है। अब आपको चाहिए कि हमारा नेतृत्व करने को आप बाहर आवें। श्री अरविंद ने उत्तर दिया 'भारत को स्वाधीन करने के लिए शायद रक्तपात की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

एक बार श्री चितरंजन दास श्री अरविंद से मिलने को पांडिचेरी गये थे। इस मुलाकात का जिक्र करते हुए एक दिन श्री अरविंद ने कहा श्री सी. आर. दास मेरा शिष्य होना चाहते थे। मैंने उनसे कहा कि जब तक आप राजनीतिक आंदोलन में हैं मेरा योग *आपसे नहीं चलेगा।'*

सन् १९२० ई. मे श्री अरविंद के पुराने साथी श्री बी. एस. मुंजे श्री अरविंद से मिलने को पांडिचेरी गये और उनसे उन्होंने कहा कि 'नागपुर में होने वाली कांग्रेस का सभापतित्व आप स्वीकार कीजिए।' श्री अरविंद ने जवाब दिया अब तो यह असंभव है कि राजनीति के साथ मैं योग को मिला सकूं। बाकी जिंदगी के लिए मैंने योग को मिशन के रूप में धारण कर लिया है।'

सन् १९३२ ई. में उन्होंने किसी साथी या मित्र को पत्र लिखा था कि राजनीति से वापस मैं इसलिए नहीं आया कि अब मैं वहां कोई काम नहीं कर सकता था। राजनीति को मैंने इसलिए छोड़ा कि इस आशय का ऊपर से मुझे स्पष्ट आदेश था। मैं नहीं चाहता था कि कोई चीज मेरे योग के साथ हस्तक्षेप करे।

इतना होने पर भी श्री अरविंद अपने देश या संसार की राजनीति से कटे हुए नहीं थे। जब हिटलर सभ्यता को रौंदने पर उतारू हो गया श्री अरविंद ने उसके खिलाफ वक्तव्य दिया था। जब सर स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने का प्रस्ताव लेकर भारत आये थे तब भी श्री अरविंद ने कांग्रेस की कार्य-समिति को सुझाव भेजा था कि यह प्रस्ताव कांग्रेस स्वीकार कर ले। ये बातें इसका प्रमाण हैं कि श्री अरविंद का योग पलायनवाद का पर्याय नहीं था। योगी हो जाने के बाद भी वे अपने धरातल से देश और संसार की गतिविधि मे भाग ले रहे थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय श्री अरविंद और श्री मां ने युद्ध-कोष में चंदा दिया था और

मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में सार्वजनिक वक्तव्य देते हुए कहा था

हम मानते हैं कि यह युद्ध केवल आत्मरक्षा का युद्ध नहीं है केवल उन देशों की रक्षा का युद्ध नहीं है जिन्हें जर्मनी और जीवन की नाजी पद्धति अपने प्रभुत्व में लाना चाहती है बल्कि यह युद्ध सभ्यता की रक्षा का युद्ध है उन सामाजिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की रक्षा का युद्ध है जिन्हें इस सभ्यता ने उत्पन्न किया है। यह युद्ध मानवता के समग्र भविष्य की रक्षा का युद्ध है।

१६ अक्तूबर १९३९ के दिन श्री अरविंद ने हिटलर के ऊपर बौना नपोलियन शीर्षक से एक कविता लिखी थी जिसके अंत में उन्होंने कहा था यह राक्षस तूफानों से बुहार हुए रास्ते पर दौड रहा है। इस रास्ते पर उसे या तो अपने से भी बडा राक्षस मिलेगा या उस पर भगवान का वज्र गिरेगा। श्री अरविंद का शाप हिटलर को लग गया।

जब सर स्टेफार्ड क्रिप्स मार्च १९४२ ई में भारत आये और उन्होंने भारत में अपने प्रस्ताव के विषय में वक्तव्य दिया तब इस वक्तव्य का स्वागत करते हुए श्री अरविंद ने उन्हें लिखा था

यद्यपि अब मेरा कार्य क्षेत्र राजनीति नहीं अध्यात्म है किंतु मैं भी भारतीय स्वतंत्रता का कार्यकर्ता और राष्ट्र का नेता रहा हूं। उस हैसियत से मैं उस प्रस्ताव की प्रशंसा करता हूं जिसे तैयार करने में आपने बडा प्रयास किया है। मुझे उम्मीद है कि यह प्रस्ताव स्वीकृत किया जायगा और देश उसका सही उपयोग करेगा।

इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने श्री राजगोपालाचारी और श्री बी एस मुंजे को अपनी राय भेजी और कार्य समिति को अपना सुझाव श्री दोराई स्वामी ऐयर के मार्फत भेजा। किंतु कांग्रेस ने उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया क्योंकि गांधी जी ने कह दिया था कि यह प्रस्ताव उस बैंक का पोस्टडेटेड चेक है जिसका दिवाला निकलने वाला है।

जिस समय क्रिप्स भारत आये थे लडाई में अंग्रेजों का बुरा हाल था और कांग्रेस के नेता इस भाव से भरे हुए थे कि इंग्लैंड अवश्य हार जायगा। इसलिए सरकार में सम्मिलित होने में वे घबरा गये। किंतु श्री अरविंद जानते थे कि जीत मित्र-राष्ट्रों की होगी अतएव देश इस मौके को हाथ से न जाने दे इसी में उसका कल्याण है। लेकिन जैसा कि श्री आयंगार ने लिखा है दैवी बुद्धिमत्ता को अदूरदर्शी राजनीतिक हिसाब किताब ने वीटो कर दिया।

इस स्थिति को श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने अपने १३ अगस्त १९५१ के वक्तव्य में स्वीकार किया था।

श्री अरविंद वस्तुओं के भीतर छिपी आत्मा को देख लेते थे। भारत की राजनीतिक स्थिति के बारे में उनकी दृष्टि अमोघ थी वह कभी भी गलती नहीं करती थी। जब सन् १९३९ ई में युद्ध आरंभ हुआ श्री अरविंद ने कहा था इंग्लैंड और फ्रांस की विजय आसुरी शक्ति पर दैवी शक्ति की विजय का प्रमाण होगी। जब स्टेफार्ड क्रिप्स अपने पहले प्रस्ताव के साथ भारत आये थे श्री अरविंद उस समय भी बोले थे। उन्होंने कहा था भारत को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन उनके परामर्श को हमने स्वीकार नहीं किया। अब हम

अनुभव करते हैं कि अगर हमने क्रिप्स के पहले प्रस्ताव को मान लिया होता तो देश का विभाजन नहीं होता शरणार्थी समस्या नहीं उत्पन्न होती न काश्मीर का प्रश्न खड़ा हुआ होता।

यहां हम अब यह भी जोड़ सकते हैं कि तब बंगला देश की ट्रेजडी भी नहीं हुई होती।

श्री अरविंद की राष्ट्रीय भावना अंग्रेजों के प्रति घृणा से उत्पन्न नहीं हुई थी। घृणा तो उन्हें न किसी देश से थी न सम्प्रदाय से। उनकी राष्ट्रीय भावना के भीतर मनुष्य मात्र का उत्थान और कल्याण समाहित था। सन् १९०७ ई के वंदेमातरम् के किसी अंक में उन्होंने लिखा था

हम स्वराज्य की लड़ाई का समर्थन इसलिए करते हैं कि स्वतन्त्रता राष्ट्रीय जीवन की पहली शर्त है। दूसरा कारण यह है कि स्वराज्य के बिना राष्ट्रीय जीवन का विकास नहीं किया जा सकता। तीसरा कारण यह है कि मनुष्यता की उन्नति का जो अगला सोपान है वह आधिभौतिक नहीं आध्यात्मिक नैतिक और मनोवैज्ञानिक उन्नति का सोपान होगा और इस सोपान पर नेतृत्व स्वतंत्र एशिया विशेषत स्वतन्त्र भारतवर्ष को देना होगा। अतएव सारे संसार के हित में भारत की स्वाधीनता परमावश्यक है। भारत का स्वराज्य इसलिए चाहिए कि उसे जीना है। स्वराज्य भारत का इसलिए भी चाहिए कि उस सारे संसार के लिए जीना है। लेकिन भारत धनाभिमानी स्वार्थी राष्ट्र बनकर नहीं जियेगा राजनीतिक और भौतिक समृद्धि का दास बनकर नहीं जियेगा। वह मनुष्य-जाति के आध्यात्मिक और बौद्धिक हित के लिए स्वतन्त्र होकर जीवन-यापन करेगा।

श्री अरविंद ने देश को जगाने के लिए कुछ भी उठा नहीं रखा। लेकिन देश जब पूर्णरूप से जाग्रत हो गया और श्री अरविंद को यह विश्वास हो गया कि अब भारत स्वतन्त्र हो जायगा व राजनीति को छोड़कर इस उद्देश्य से एकांत में चले गये कि राजनीति से ऊपर उठकर वे किसी बड़े ध्येय के लिए काम कर सकें। जोसेफ बैपटिस्टा को उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा था कि अब मेरी चिंता का विषय यह है कि भारत अपने आत्मनिर्णय के अधिकार को लेकर क्या करेगा वह अपनी स्वतंत्रता का कैसा उपयोग करेगा और अपना भविष्य वह किस दिशा में निर्धारित करेगा।

हम आशा है कि भारत समस्त मानव-जाति के लिए वह आध्यात्मिक भूमिका अदा करने में समर्थ होगा जिसकी कल्पना श्री अरविंद ने की थी।

२४ दिसंबर १९७२

खोयी हुई कड़ी का संधान

श्री अरविंद आश्रम के साधक कभी कभी महर्षि रमण के यहा भी जाया करते थे। महर्षि बोलते बहुत कम थे। एक बार न जाने क्या सोचकर उन्होंने श्री अरविंद आश्रम के एक साधक से कहा अरे श्री अरविंद से कहा कि अब इतना प्रयास क्यों कर रहे हैं? जो कुछ जाना जा सकता है उसे वे जान चुके हैं जहां तक पहुचा जा सकता है वहां तक वे पहुंच चुके हैं। अब आगे क्या है?

महर्षि परंपरागत संत थे। उनका मार्ग ज्ञान का मार्ग था और ज्ञान-मार्ग पर चलकर उन्होंने वह स्थिति प्राप्त कर ली थी जहां मन निर्विचार हो जाता है और समाधि में जाने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता।

संसार के सभी देशों में अध्यात्म की यही प्रथा थी। निर्विचार की स्थिति मन को परमात्मा में लीन कर देने की क्षमता वैयक्तिक शांति और मोक्ष यही परंपरागत अध्यात्म का लक्ष्य था। किंतु श्री अरविंद का ध्येय वैयक्तिक मुक्ति नहीं थी वे समस्त मानव जाति के लिए मुक्ति चाहते थे। वे मनुष्य जाति का रूपांतरण अध्यात्मजीवी अथवा नास्तिक लोग की जाति के रूप में करना चाहते थे।

जहां तक मुझे मालूम है अपनी वैयक्तिक मुक्ति को तुच्छ मानकर सभी जीवों की मुक्ति के लिए प्रयास की पहली कल्पना भारतवर्ष में ही प्रारंभ हुई थी और उसके आदि उद्गाता महायानी संत श्री शांतिदेव थे जिनका समय ६५० ई के आसपास माना जाता है। अपने प्रसिद्ध ग्रंथ बोधिचर्यावतार में शांतिदेव ने लिखा है कि समस्त सृष्टि एक है और इस एकता की अनुभूति निर्वाण या मोक्ष से भी बड़ी चीज है।

स्वप्राणानां जगत्प्राणैर्नदीनामिव सागरे
अनन्यैर्यो ध्यानिश्र तदेवानन्तजीवनम्।।

जब अनंत प्राणों के साथ अपने प्राण का वैसा मिलन हो जैसा मिलन नदियों का समुद्र के साथ होता है तभी अनंत जीवन की प्राप्ति होती है अमरता अथवा निर्वाण प्राप्त करने से नहीं।

मोक्ष से कहीं श्रेयस्कर ध्येय अपने सह-बंधुओं के कष्ट का निवारण है इसका

आख्यान करते हुए शांतिदेव कहते हैं

मुच्यमानेषु सत्वेषु ये ते प्रामोद्यसागरा
तैरेव ननु पर्याप्तं मोक्षेणारसिकेन किम्?

जीव जब दु ख से मुक्त होते हैं तब उससे बोधिसत्व के हृदय में जो आनद का समुद्र उमड़ पड़ता है उतना ही पर्याप्त है। रसहीन मोक्ष से क्या प्रयोजन?

एवमाकाशनिष्ठस्य सत्वाधातोरनेकधा
भवेयं उपजीव्योऽहं यावत् सर्वे न निर्वृता ।

अनताकाश मे स्थित जितने सत्वधातु (यानी जीव) हैं जब तक वे मुक्ति नहीं पा लेते तब तक मै उनकी इसी प्रकार सेवा करता जाऊगा।

किंतु शांतिदेव को हम इतना ही श्रेय देते हैं कि उन्हे इस बात की अनुभूति हुई कि ससार को बद्ध छोड़कर स्वयं मुक्त हो जाना कोई बहुत बड़ा ध्येय नहीं है। जैसे मनुष्य अपना आध्यात्मिक रूपांतरण करके मोक्ष प्राप्त करता है उसी प्रकार समस्त ससार का आध्यात्मिक रूपातरण करके मनुष्य मात्र को मोक्ष की स्थिति मे कैसे पहुचाया जाय यह बात शातिदेव को नही सूझी थी। ससार के कल्याण के लिए उचित उन्होने यह समझा कि मनुष्य अपना वैयक्तिक मोक्ष न खोज कर जीव मात्र की सेवा मे लीन हो जाय। उन्होने बोधिसत्व के जिस चरित्र का प्रतिपादन किया है वह नि स्वार्थ समाजसेवी का चरित्र है और बोधिसत्व की प्रार्थनाए प्रार्थना न होकर एक प्रकार की प्रतिज्ञा अथवा सकल्प हैं

अनाथानां अहं नाथ सार्थवाहश्च यात्रिणाम्,
पारेप्सुनां च नौभूत सेतु संक्रम एव च।
दीपार्थिनामहं दीप शय्या शय्यार्थिनामहम्,
दासार्थिनामहं दासो भवेयम् सर्व देहिनाम्।

वैयक्तिक मोक्ष के आदर्श को हीन मानकर समस्त जीव-जगत् की सेवा के लिए प्रयास करना यह शातिदेव के समय के लिए बहुत ही नवीन बात थी। किंतु यह नवीनता भी हमारे समय में आकर चरितार्थ हुई जब स्वामी विवेकानद ने श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना करके सन्यासियों के सामन भी यह आदर्श रखा कि समाज सेवा ही आध्यात्मिक विकास का भी सही मार्ग है।

इस आदर्श का समर्थन महात्मा गाधी ने भी किया। धर्म के प्रचलित रूपों से आजिज आकर मार्क्स ने कहा था कि वैयक्तिक मोक्ष खोजने का ध्येय गलत ध्येय है। मोक्ष असल में समाज का होना चाहिए और समाज के मोक्ष का अर्थ मार्क्स समाज का आधिभौतिक मोक्ष समझते थे। जब गाधी जी आये उन्होने मार्क्स मे सशोधन कर दिया और यह कहा कि मोक्ष तो हमेशा व्यक्ति का ही होता है किंतु वैयक्तिक मोक्ष का भी मार्ग यही है कि हम समाज की मुक्ति के लिए प्रयास करें। गाधी जी थे तो राजनीति मे किंतु उनका चरम उद्देश्य परमात्मा का साक्षात्कार था और इस साक्षात्कार के लिए ही वे देश समाज और विश्व की सेवा म लगे थे।

श्री अरविंद की सबसे बड़ी महिमा यह है कि उन्होंने मनुष्यता के सामने यह कल्पना रखी कि आध्यात्मिक जीवन सभी मनुष्यों के लिए संभव है यह उनके भीतर विद्यमान है और वह प्रकट किया जा सकता है। उनकी सबसे बड़ी क्रांतिकारी कल्पना यह है कि मनुष्य-जाति का रूपांतरण अध्यात्मजीवी जाति अथवा नास्टिक बीग के रूप में की जा सकती है और मनुष्य जिस सुख शांति और आनंद को स्वर्ग में उपलब्ध मानता है वह सुख शांति और आनंद इसी पृथ्वी पर इसी जीवन में भोगा जा सकता है और समस्त पृथ्वी आध्यात्मिक चेतना से पूर्ण बनायी जा सकती है। श्री अरविंद का दावा है कि पृथ्वी के इस रूपांतरण की कल्पना राम कृष्ण बुद्ध शंकर किसी को भी नहीं सूझी थी। एक स्थान पर उन्होंने यह भी कहा है कि यह सोचकर लोग मुझ पर हंस सकते हैं मेरा मजाक उड़ा सकते हैं कि मैं एक ऐसी कल्पना को रूप देने की कोशिश कर रहा हूं जो मुझसे बड़े-बड़े आध्यात्मिक नेताओं को भी नहीं सूझी थी। किंतु इस अपमान के भय से मैं अपना प्रयोग छोड़ नहीं सकता। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य रूपांतरित होकर नास्टिक बीग की स्थिति को प्राप्त कर सकता है और परम चेतना के भीतर जो शक्तियां छिपी हुई हैं वे सारी शक्तियां मनुष्य में प्रकट हो सकती हैं। इसी जीवन को श्री अरविंद दिव्य जीवन कहते हैं।

श्री अरविंद पश्चिमी और पूर्वी दोनों दर्शनों में निष्णात थे किंतु वे अपने को दार्शनिक कहने से इनकार करते थे। असल में उनका मार्ग योग का मार्ग था और मनुष्य से वे कोई ऐसी बात नहीं कहना चाहते थे जो केवल सोची हुई हो अथवा जिसकी उन्हें प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं हुई हो। पश्चिम की यह परंपरा रही है कि वह विचार बुद्धि और तर्क को ज्ञान का साधन समझता है और आध्यात्मिक शक्ति को भी तभी सत्य मानता है जब वह बुद्धि की कसौटी पर प्रमाणित की जा सके। पर भारत की स्थिति इसके ठीक विपरीत रही है। परम सत्य तक जाने के लिए बुद्धि तथा तर्क का प्रयोग इस देश में भी किया जाता रहा है किंतु तर्क तथा बुद्धि यहां बराबर गौण मानी जाती रही है। प्रधानता भारत में उस अनुभूति को दी जाती रही है जो आध्यात्मिक प्रकाश अथवा संबुद्धि की जगमगाहट में देखी गयी हो। केवल तर्क को भारतीय परंपरा सत्य का मार्ग नहीं मानती। जो परम सत्य है उसे न तो मेधा समझ सकती है न पांडित्य परख सकता है। न मेधया न बहुना श्रुतेन। भारत में जो श्रेष्ठ दार्शनिक हुए हैं वे केवल पंडित नहीं केवल विचारक नहीं बल्कि योगी भी थे। इस देश में जिन लोगों ने परम चेतना तक पहुंचने के लिए बुद्धि का मार्ग अपनाया उनका भी उद्देश्य यही था कि वे मानसिक चिंतन की सीमा के पार पहुंच सकें।

इसीलिए जो लोग एकमात्र तर्क को पकड़कर बैठे हुए हैं और सत्य को वहीं तक सीमित समझते हैं जहां तक विज्ञान की छड़ी पहुंची है उनके लिए श्री अरविंद का दर्शन किसी काम का नहीं है। किंतु संसार में ऐसे लोग भी हैं जो तर्क को यथेष्ट नहीं समझते जो उस ज्ञान से संतुष्ट नहीं हैं जिसे विज्ञान ने प्राप्त किया है। उनकी यह भावना है कि केवल विज्ञान से मनुष्य का त्राण नहीं होगा। विज्ञान को साथ लेते हुए हमें कुछ ऐसा संबल भी चाहिए जो विज्ञान के पास नहीं है जो संतों और द्रष्टाओं की विशेषता है जिसके द्वारा मनुष्य का वह रूप भी समझा जा सकता है जिस रूप तक विज्ञान की किरणें

नहीं पहुचतीं।

संसार मे भौतिकवादियों की संख्या कम नहीं है किंतु वे सब-के सब भागवादी ही हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। फिर भी भौतिकवाद की चरम शिक्षा वही है जिस प्रकार कारामाजोव में पापा कारामाजोव ने अभिव्यक्ति दी है। संसार की गुत्थी को तुम किसी भी तरह सुलझा नहीं सकते। जीवन जैसा है वैसा ही उस स्वीकार करो। आनंद-रस का पान तलछट तक करो। जब तक भी एक आउंस वोदका और एक नारी संसार में उपलब्ध है तब तक जिंदगी जीने के योग्य है।'

इसके विपरीत कृच्छ्र साधकों का वह संप्रदाय है जो मानता है कि जहां-जहां सुंदरता है वहां-वहां पाप है जहां-जहां आनंद है वहां-वहां शाप है। इसलिए उचित है कि हम इंद्रियों को कठोर नियंत्रण में रखें और सांसारिक सुखों का सर्वथा त्याग करें। असल में जन्म लेना ही अभिशाप है। और यह दीपक जितना शीघ्र बुझ जाय उतना ही अच्छा है। ये सभी सुख निकृष्ट हैं जो संसार में मिलते हैं। हमारा लक्ष्य तो वह सुख होना चाहिए जो हमें स्वर्ग में मिलेगा। लेकिन चूंकि स्वर्गवाला सुख मरे बिना प्राप्त नहीं होगा और मरना अपने हाथ में नहीं है इसलिए जीवन भर हमे देह को दंडित करना चाहिए, स्पर्श घ्राण रूप रस और शब्द का त्याग करना चाहिए। बुद्ध ने जब दीर्घ उपवास को व्यर्थ पा कर भोजन लेना आरंभ किया था तब उनके पंच ब्राह्मण साथी उन्हें पतित मानकर उनका त्याग कर गये थे। ये पंच-ब्राह्मण अवश्य ही कृच्छ्र साधक अथवा एसेटिक' रहे होंगे। किंतु बुद्ध ने भोजन लेना नहीं छोड़ा क्योंकि कठोर त्याग और अति भोग दोनों की व्यर्थता को समझकर वे मध्यम मार्ग पर आ गये थे। श्री अरविंद का भी मत है कि भौतिकतावादी जब संसार को आर से पकड़ता है तब वह गलती करता है। इसी प्रकार जब त्यागी संसार के प्रत्येक स्वाद को शंका से देखता है तब वह भी गलती करता है। भौतिकतावादी की भोगवृत्ति जितनी बड़ी भयानक भूल है त्यागी की कृच्छ्र-साधना भी वैसी ही भयानक भूल है। यह भी कि भौतिकतावादी तब भी भूल करता है जब वह यह समझता है कि सारा सत्य शरीर है आत्मा नाम की चीज होती ही नहीं है। और यही भूल कृच्छ्र साधक (एसटिक) भी करता है जब वह यह समझता है कि शरीर तो माया का खेल है असली अविनश्वर तत्त्व आत्मा है और आत्मा का कल्याण तब होता है जब शरीर की सारी आवश्यकताओं की उपेक्षा या अवहेलना की जाती है।

श्री अरविंद के मत से आत्मा की उपेक्षा गलत बात है क्योंकि यद्यपि विज्ञान की प्रयोगशाला में अथवा आपरेशन की मेज पर आत्मा का पता नहीं चलता फिर भी हमारे भीतर कोई शक्ति है जो स्वर्ग के सपने देखा करती है जो दुःखों से मुक्ति की कल्पना को सत्य मानती है जो इस स्वप्न को पृथ्वी पर उतारना चाहती है और जो समस्त भोगों के बीच भी अतृप्त रहकर हमारे अस्तित्व के दरवाजे पर दस्तक देती है मानो वह कह रही हो कि जागो अमृत तुम्हारा इंतजार कर रहा है लेकिन वह यहीं है। कहीं और नहीं। सर्वत्र व्याप्त सत्य के अस्तित्व से इनकार करके तुम शांति को नहीं पा सकोगे।

संसार में जो भी रहस्यकुंज थे उन्हें बुद्धि ने उजाड़ डाला। जीवन का जो भी क्षितिज अनंत की ओर संकेत करता था उसे बुद्धि ने अपनी चकाचौंध से तोप दिया। आत्मा का

दबाकर शरीर की पूजा करने का अभियान मनुष्य ने घनघोर रूप से चलाया फिर भी आत्मा दबायी नही जा सकी। सावित्री काव्य मे श्री अरविंद ने कहा है

जीवन और मनुष्य ने जिन तत्वो को कुचल डाला उनके भीतर से भी ईश्वरता की धीमी आवाज आ रही है। कोई सांस अनत महाकाश से आती है जिसे हम महसूस करते हैं।

जो लोग उस ज्ञान से सतुष्ट नही हैं जिसे विज्ञान ने उत्पन्न किया है वे आज भी जीवन के उस रहस्य के प्रति जिज्ञासु हैं जो विज्ञान के परे पडता है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह जितना है उससे अधिक बनना चाहता है। और उसकी यह प्रवृत्ति ठीक है क्योकि वह जहा तक पहुंचा है उससे बहुत आगे तक जाने की उसमे सामर्थ्य है।

और कोरे आत्मवादियो की भी दुर्दशा कुछ कम नही है। शरीर की अनिवार्य आवश्यकताओं का बलपूर्वक दमन करने के क्या कुपरिणाम होते हैं अनेक ऋषि मुनि योगी और महात्मा इसके प्रमाण हैं। सस्कृति प्रकृति से भिन्न गुण अवश्य है किंतु वह प्रकृति से धीरे धीरे रूपातरित होकर प्रकट होती है। यदि कोई समझता है कि मैं प्रकृति के वेगा को बलपूर्वक दबा रखूगा तो यह उसकी भूल है। समय पाते ही प्रकृति अपना प्रतिशोध दुगुने क्रोध के साथ लेने को खडी हो जायगी।

इंद्रिय द्वार झरोखा नाना
तहं तहं सुर बैठे करि थाना।
आवत देखहिं विषय बयारी
बरबस देहिं कपाट उघारी।
छल बल छलकरि जाय समीपा
अंचलबात बुझावति दीपा।
सो दीपक को बार बहोरी?

प्रकृति का नितांत दास हो जाना जितना बुरा है प्रकृति से बिलकुल भाग खड़ा होना भी उतनी ही खतरनाक बात है। जिस पृथ्वी को कृच्छ्र साधक घृणित और पापमयी समझता है उसके रंध्र रंध्र में भागवत चेतना विद्यमान है। और जिसे हम स्वर्ग समझते हैं वह पृथ्वी का ही स्वप्न है। लोक त्याज्य और परलोक ग्राह्य है ऐसा सोचना अधूरा चिनन है। नचिकेता ने यम से लोक और परलोक दोनों मांगे थे। मनुष्य का कल्याण उस दर्शन से नही होगा जो लोक और परलोक मे से केवल एक का पक्षपाती है। श्री अरविंद लोक और परलोक को एक बनाने के अभिलाषी हैं। एक समय उन्होने सोचा था कि पृथ्वी और स्वर्ग का विवाह हो जाय तो बहुत अच्छी बात हो। अपनी कविता ए गाड्स लेबर मे उन्होने लिखा था

सोचा था निर्मित कर कोई
दिव्य सेतु सुरधनु का
महाकाश के साथ मही का

परिणय कभी रचाऊंगा।
जो सीमा के परे विश्व है
उसकी मनोदशा का
बीज कभी इस नृत्यशील,
लघु ग्रह के मध्य गिराऊंगा।

पृथ्वी और स्वर्ग क विवाह की क ्पना फिर भी विनम्र कल्पना थी। किंतु श्री अरविंद इस कल्पना का नक्श पृथ्वी के अतिमानसी रूपांतरण तक पहुच गय जिसकी चर्चा हम आगे चलकर करग। अतिमानसी रूपातरण वह सबस बड़ा और नवीन स्वप्न है जिसे श्री अरविंद मानवता के आग टांगकर गय हैं। यह स्वप्न जितना ही कठिन है उतना ही वह अनिवार्य भी लगता है।

भौतिकतावाद और कृच्छ्र साधना दानां के विरोधी हात हुए भी श्री अरविंद दोनों के गुण-पक्ष को स्वीकार करत थे। बुद्धिवादी भौतिकतावाद की आयु अभी भी बहुत कम है किंतु इतने दिनों में ही उसने प्रकृति और मनुष्य क निम्न स्तरा का जा प्रभूत ज्ञान प्राप्त कर ि या है वह बड़ा ही उपयोगी और ठास है। इसी प्रकार कृच्छ्रतासेवी आत्मवादिया ने अज्ञात लाक में प्रवेश करने का जा प्रयास किया आत्मा के लोक की रूपरेखाओ की मनुष्य का जा सूचनाए दी उससे भी मनुष्य को अपरिमित लाभ हुआ है। इतिहास यह है कि भारत म आत्मा भौतिकता क खिलाफ रही है और अब पश्चिम म भौतिकता आत्मा से विद्रोह कर रही है किंतु दोना प्रवृत्तियों म स किसी ने भी ऐसा दर्शन तैयार नहीं किया जिसम जीवन भी मिलता हो और प्रकाश भी। भोग सत्य का एक छार है वैराग्य उसका दूसरा छार है। किंतु सपूर्ण सत्य वह है जा दानो का अपने भीतर समाहित करता है और फिर दोना से आगे निकल जाता है।

विचारो के विकास की भी लीला विचित्र है। श्री अरविंद से पूर्व स्वामी विवेकानद ने अमरीका को त्याग के लिए और भारत को भाग क लिए प्ररित किया था एक को अर्जन सिखाया था और दूसरे का विसर्जन का उपदेश दिया था। किंतु श्री अरविंद की शिक्षा यह है कि भाग और त्याग दोनो को स्वीकार करक दानो को समटकर हमे दोनो के पार चला जाना चाहिए। श्री अरविंद ने जो दर्शन दिया है वह पश्चिम क लिए भी है और पूरब के लिए भी। यही नहीं इस दर्शन को अपनाये बिना न पूरब का कल्याण है न पश्चिम का। श्री अरविंद की कल्पना है कि योग के लिए परिवार या संसार का छाडना आवश्यक नही है। योग जिस एकांतता के साथ मदिर मे चलता है उसी एकातता क साथ वह दफ्तरो और कारखानों में भी चल सकता है। रज्जब जी ने कहा था

एक जोग मे भोग है एक भोग में जोग।
एक बुड़हिं वैराग्य में इक तरहि सो गिरही लोग।

रज्जब जी का यह स्वप्न श्री अरविंद क दर्शन मे छिपा हुआ है।

आत्मवाद और भौतिकतावाद के बीच का विभाजन पुरानी नहीं अपेक्षाकृत नयी घटना है यहा तक कि न्यूटन और उनके समकालीन वैज्ञानिक आस्तिक थे और आत्मा के अस्तित्व मे विश्वास करते थे। सर जेम्स जीन्स इसी शताब्दी में हुए हैं किंतु वे नहीं मानते थे कि सत्य वहीं तक है जहां तक विज्ञान उसे देख सका है। हमारे दृश्य जगत् की सारी क्रियाएं मात्र फोटान और दृश्य की क्रियाएं हैं तथा इन क्रियाओ का एक मात्र मच देश और काल है। इसी देश और काल ने दीवार बनकर हमे घेर रखा है। वास्तविकता के जो बिब हम इन दीवारा पर देखते हैं वे ही मैटर के कण और उसकी लीलाए हैं। असल में जिस वास्तविक्ता की छाया इन दीवारो पर पड रही है वह स्वय देश और काल के परे है।

अर्थात् सर जेम्स जीन्स को यह संभावना दिखायी पड़ी थी कि देश और काल से बाहर निकलने का कोई मार्ग हो तो उस पर चलकर आदमी पूरी वास्तविकता को देख सकता है। स्पष्ट ही वह मार्ग योग का मार्ग है।

यहां भारत मे भी एक विचित्र घटना घटी। मुडकोपनिषद ने घोषणा की थी सर्वं खलु इदं ब्रह्म। यहां जड और चेतन प्रकाश और अधकार पेड पत्थर नदी पहाड़ साधु और असाधु जो कुछ भी है वह सब ब्रह्म है। किंतु शकराचार्य ने शून्यवाद को आत्मसात् करने के प्रयास मे यह घोषणा कर दी कि ब्रह्म तो सत्य है किंतु जगत् मिथ्या है माया है जिसका अस्तित्व नही है। निर्लंब उपनिषद मे एक सूक्ति है जो सारे भारत मे प्रचलित हो गयी है। यह सूक्ति है ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। इस सूक्ति को हम पीढ़ी-दर पीढ़ी दुहराते आये हैं किंतु हमने कभी यह प्रश्न नहीं पूछा कि जब सब कुछ ब्रह्म ही है तब जगत् को उससे भिन्न किस न्याय स किया जा रहा है। आखिर कौन सी घटना घटी जिससे ब्रह्म ता सत्य का सत्य रह गया और जगत् मिथ्या हो गया? यही वह खोयी हुई कड़ी है जिसका अनुसंधान श्री अरविंद ने किया। यह कड़ी भारत में ही लुप्त नहीं हुई थी वह पश्चिमी जगत् में भी लुप्त हा गयी थी और श्री अरविंद उसका फिर से अनुसधान इसलिए कर सके चूकि श्री अरविंद के भीतर आकर पूरब और पश्चिम दोनो एक हो गये थे। उन्होंने लिखा है कि पश्चिम परिणामवादी (प्रागमैटिक) सत्य के प्रकाश में शक्ति से उच्छल हो रहा है प्रकृति के भीतर ईश्वर क नर्तन पर मुग्ध है। किंतु भारत का मन उसी सत्य का ध्यान शांति और नीरवता से करता है। असल में सत्य के इन दो रूपो में कोई भिन्नता नहीं है। उन्हें भिन्न बताना भेदबुद्धि का काम है। परिणामवादी लोग कहते हैं कि सृष्टि आप से-आप बनी है उसका कोई नियता नहीं है। तो फिर वह जिन नियमों से चलती है वे नियम कहां से आ गये? परमात्मा की सत्ता माने बिना परिणामवादियों का यह अनुमान अपना महत्त्व खो देता है और सृष्टि को वह आतिशबाजी का खेल बना देता है। आतिशबाजी जो आप-से-आप पैदा हुई है और आप से-आप भभक्कर किसी दिन शून्य में विलीन हो जायगी। सृष्टि किसी चेतन शक्ति का स्वरूप है वही शक्ति इसका कारण और कार्य है वही शक्ति यंत्र और उसका चालक है वही शक्ति गायक और गान है वही शक्ति कवि और उसकी कविता है। वही शक्ति अतिमानस और मन है जीवन और जड़ पदार्थ है आत्मा और प्रकृति है।

प्रश्न यह था कि आदम और हौवा बनाये गये थे अथवा वे विकास के क्रम में उत्पन्न हुए?

श्री अरविंद का उत्तर है कि वे विकास के क्रम में प्रकट हुए, वे पैदा नहीं किए गये थे। श्री अरविंद विकासवादी हैं और मानते हैं कि सारी प्रकृति चेतन है। उसका सबसे निचला रूप वह है, जो जड़ मालूम होता है। उसका उच्चतम रूप अतिमानसी स्थिति है, जो चेतना का जाज्वल्यमान् रूप है। जो चेतन नीचे जड़ के आवरण में सोया हुआ है, वही धीरे-धीरे विकसित होकर चेतना के शिखर पर पहुंचने का प्रयास कर रहा है। इसलिए हर चीज जो विकसित होती है, वह उससे श्रेष्ठ है, जिसमें से उसका विकास हुआ है। आदमी बंदर से बढ़कर आदमी हुआ हो, इसकी संभावना है। किंतु वह आप से-आप आदमी नहीं बना। उसके पीछे ईश्वरीय चेतना काम कर रही थी। वह चेतना के विकास का परिणाम है। इस प्रकार विकास की जो कड़ी वैज्ञानिकों को नहीं मिल रही थी, वेदांत के आधार पर श्री अरविंद ने उसका पता लगा लिया।

जड़ और चेतन के बीच जो द्वंद्व छिड़ा हुआ है, उसका यह कागजी समाधान था। किंतु श्री अरविंद केवल दार्शनिक नहीं थे कि कागजी समाधान पाकर वे संतुष्ट हो जाते। जीवन और जगत में ब्रह्म व्याप्त है, यह ज्ञान यथेष्ट नहीं है। आवश्यक यह है कि इस ज्ञान को प्राप्त करके जीवन और जगत को बदलने की शक्ति हममें आती है या नहीं। सावित्री की दो पंक्तियों में उन्होंने कहा है कि जिस ज्ञान की प्राप्ति से जगत् को परिवर्तित करने की शक्ति नहीं आती, वह सत्य और वह ज्ञान केवल मन बहलाने वाली अकर्मण्य आलसी किरण है।

जो खोयी हुई कड़ी श्री अरविंद के हाथ लगी थी, वह अमल में मैटर पर आत्मा की विजय की कुंजी थी। इस कुंजी के साथ उन्होंने ऐसी छलांग मारी कि वे पश्चिम और पूर्व (यानी भारत) की कई मान्यताओं से बाहर निकल गये। उन्होंने यूरोप के बुद्धिवाद का त्याग किया और शंकर द्वारा प्रवर्तित इस सिद्धांत को भी मानने से इनकार कर दिया कि दृश्य जगत् निस्सार है, असत्य है, मायामात्र है। तुलसीदास जी ने ठीक ही लिखा है कि असली राह उसे मिलती है, जो सभी रास्तों को छोड़ देता है।

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ
जुगल प्रबल कोउ मानै
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम
सो आपन पहचानै।

श्री अरविंद का विकासवाद

जब तक ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या का नारा नही निकला था तब तक भारतवासियो का यह भाव था कि ब्रह्ममय होने के कारण सर्वं खलु इद ब्रह्म सारा जगत सत्य है और मनुष्य परमात्मा का अंश है। लेकिन ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या के नारे के बाद भी हिंदुओ ने अपने को ब्रह्म मानने का दावा नही छोडा। पहले भारत और यूरोप दोनो ही भूभागों मे मनुष्य सृष्टि का सिरमुकुट समझा जाता था। भारत में व्यास ने कहा था नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्। यूरोप मे भी मनुष्य का पद सर्वोच्च समझा जाता था और आदमी समझता था कि मैं विधाता का मास्टरपीस हू उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति हू। भारत म कल्पना थी कि आदि मनुष्य मनु को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया था और सामी सभ्यता का यह विश्वास था कि आदम का निर्माण परमेश्वर न किया था। किंतु जब डारविन ने अपना ओरिजिन आव स्पेसीज नामक ग्रथ प्रकाशित किया सारे ससार मे एक तहलका मच गया और अपन को ईश्वर का अश और उसका निर्माण मानने वाले मनुष्य को यह जानकर निराशा हुई कि वह देव योनि से नहीं निकला है बल्कि पशु योनि से बढकर मनुष्य हुआ है और पाशविकता उसके भीतर अब भी मौजूद है। डारविन की खोज का निष्कर्ष यह था कि आदमी बंदर से विकसित होकर आदमी बना है।

डारविन की स्थापना यह भी थी कि जीवो के बीच सघर्ष छिडा हुआ है और जीव जीव को खा रहे हैं और इस सघर्ष मे जीवित वही रहेगा जो सबसे अधिक समर्थ और शक्तिमान होगा। डारविन के सिद्धांत से नक्शा यह उभरा कि प्रकृति शांति और सुंदरता का पटल नहीं बल्कि सघर्ष का रक्त रंजित क्षेत्र है। डारविन ने ईश्वर के सर्वश्रेष्ठ पुत्र मनुष्य से देवत्व छीनकर उसे जानवर बना दिया जो अपने को जीवित रखने के लिए संघर्ष कर रहा है।

डारविन की यह स्थापना पुरानी दुनिया क लोगो को अच्छी नहीं लगी। सन् १८६४ ई मे डिजरैली ने सवाल किया था आदमी बदर है या देवता? और खुद ही उन्होंने उसका जवाब भी दिया था कि मेरा पक्षपात देवता के साथ है। यहां भारतवर्ष में भी अकबर इलाहाबादी ने डारविन पर व्यंग्य किया

मंसूर ने पुकारा खुदा हू मै।
डारविन बोले बूजना हू मै।

डार्विन के बारे में अकबर साहब का एक और शेर मशहूर है जिससे ज्ञात होता है कि धर्म और अध्यात्म के समर्थक लोग डार्विन का मत स्वीकार करने को कतई तैयार नहीं थे।

डार्विन साहब हकीकत से निहायत दूर थे।
मैं न मानूंगा कि मूरिस आपके लंगूर थे।

एलेक्ट्रान और प्रोटोन की लीला न्यूटन द्वारा निरूपित नियमों से ठीक ठीक समझी नहीं जा सकती। फिर भी न्यूटन को हम गलत नहीं कह सकते क्योंकि परमाणु के टूटने से पहले की सभी स्थितियां उन्हीं के नियमों से समझी जाती हैं। इसी प्रकार संभव है कि डार्विन भी एक हद तक (यानी निम्न स्तर तक) ठीक हों। किंतु प्रश्न जब गहराई में जाता है तब डार्विन उसका जवाब नहीं दे सकते। उन्हें जवाब देना भी नहीं चाहिए क्योंकि उत्तर उन्हें मालूम नहीं है क्योंकि यह विषय विज्ञान के क्षेत्र से बाहर पड़ता है।

वह प्रश्न यह है कि आखिर विकास का आरंभ ही क्यों हुआ?

विकास हुआ है और होता जा रहा है यह सही है। किंतु पुराने और नये लोगों की मान्यताओं में भेद हो गया। पुराने लोगों ने दार्शनिक सबुद्धि से काम लिया था और नये लोग प्रयोगशाला में सत्य की परीक्षा करके बोल रहे हैं किंतु लुप्त कड़ी की खोज दोनों को परेशान किये हुए है। आखिर वह कौन-सा कारण था जिसके चलते सृष्टि को विकसित होना पड़ा?

वैज्ञानिकों ने मान लिया है कि आदि काल में कोई द्रव्य रहा होगा। संभव है वह परमाणु रहा हो वाष्प रहा हो विद्युत रहा हो या ईथर रहा हो। उसके भीतर कोई ऊर्जा थी जिससे वह द्रव्य विकास की ओर चलने लगा। यो संभव है यह ऊर्जा कहीं अन्यत्र से आयी हो। श्री अरविंद कहते हैं कि यह गड़बड़ घोटाला है। यह ऊर्जा कहां से आयी? चिरकाल तक वह निश्चेष्ट क्यों रही और अचानक वह क्रियाशील क्यों हो उठी?

श्री अरविंद ने प्रश्न उठाया इस द्रव्य की वास्तविकता क्या है? इस ऊर्जा का स्वभाव क्या है? वह वस्तु क्या है जो विकसित होती है? और विकास हुआ ही क्यों है?

विज्ञान को मौन पाकर श्री अरविंद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मूल द्रव्य के भीतर से वही चीज प्रकट हो सकती है जो पहले से उसमें मौजूद रही हो। जो चीज मूल द्रव्य में है नहीं वह विकास के क्रम में उससे प्रकट कैसे हो सकती है? नथिंग केन इवाल्व हिवच इज नाट इनवाल्व्ड। जो तत्त्व जड़ था उसमें से चेतन का विकसित होना बिलकुल असंभव बात है।

श्री अरविंद कहते हैं हमें यह मानना ही पड़ेगा कि जो चीज विकसित हुई है वह पहले से ही क्रियाशील या अक्रिय रूप में मूल द्रव्य के भीतर मौजूद थी भले ही वह प्रच्छन्न रही हो। आत्मा जो शरीर में प्रकट हुई है वह पहले से ही पुद्गल में विद्यमान थी उसके कण-कण में व्याप्त थी। इसी प्रकार जीवन और मन भी उस मैटर में छिपे हुए थे और मन में भी आगे जो शक्तियां हैं वे मैटर में छिपी हुई हैं। आदि द्रव्य यदि जड़ था तो उसमें से चेतन

उत्पन्न कैसे हो सकता था?

यही अनुभूति नींव की वह ईंट है जिस पर श्री अरविंद-दर्शन का हर्म्य खड़ा है। श्री अरविंद विकासवाद का वेदांतीय समाधान देते हैं। मैटर में चेतन छिपा हुआ था। वही जीवन बनकर प्रकट हुआ। जीवन में मन अंतर्हित था वही मस्तिष्क बनकर प्रकट हुआ। जीवन मैटर के भीतर प्रच्छन्न था और मन जीवन में छिपा हुआ था। मन से पर की शक्तियां भी मन के भीतर प्रच्छन्न हैं। वे भी धीरे-धीरे प्रकट हो जायगी।

जीव वह जीवित प्रयोगशाला है जिसमें काम करके प्रकृति ने मनुष्य को उत्पन्न किया। मनुष्य वह चिंतनशील प्रयोगशाला है जिसमें से प्रकृति अतिमनुष्य अथवा देवता उत्पन्न करने में लगी है। किंतु मनुष्य चूंकि खुद सोचनेवाला जीव है अतएव अगले विकास की प्रक्रिया के साथ उसे सहयोग करना पड़ेगा। द्रव्य से जीवन और जीवन से मन उत्पन्न हो चुके हैं। अब मन के भीतर से अति मन प्रकट होने वाला है जो मन के भीतर प्रच्छन्न है।

मन को उत्पन्न हुए लाखों वर्ष हो गये और इस बीच मन का विकास भी बहुत दूर तक हुआ है। किंतु विकास की प्रक्रिया में मन ने मनुष्य के लिए भयानक समस्याएं भी खड़ी कर दी हैं। पिछले दो सौ वर्षों से तो मनुष्य ने बुद्धिवाद को अपना सर्वस्व ही मान लिया है लेकिन बुद्धि ने मनुष्य के आगे जो समस्याएं खड़ी कर दी हैं उन्हें सुलझाने में बुद्धि असमर्थ है। श्री अरविंद ने कहा है बुद्धि सहायिका थी लेकिन वही अब मुख्य बाधा बन गयी है। राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक आंदोलन युद्ध और शांति के लिए किये जाने वाले सारे प्रयास सरकारें तोड़ना और सरकारें बनाना नाना प्रकार के वैचारिक आदोलन और अगणित मतवाद ये सब के सब पैबंदबाजी के काम हैं जो समस्या को टालने के लिए किये जाते हैं। ये सारे बुद्धि के काम हैं जिन्हें बुद्धि ही विफल कर देती है। मनुष्य बुद्धि के धरातल पर बहुत दिनों से ठहरा हुआ है। बुद्धि का प्रयोग करके उसने तरह तरह के सुख भोगे हैं किंतु इसी बुद्धि की आग अब उसे जला रही है। बुद्धि के धरातल पर रुककर अब वह अपनी समस्याओं का समाधान नहीं पा सकता। आवश्यक यह है कि वह मन के धरातल से आगे बढ़ने की कोशिश करे और अतिमन की अवस्था में पहुंच जाय। उसके विकास का यही अगला सोपान है। प्रकृति उसे इसी सोपान पर ले जाने के लिए प्रयास कर रही है और यही भागवत करुणा का भी संकेत है। सावित्री काव्य में श्री अरविंद ने एक जगह लिखा है कि मनुष्य के भीतर विश्व भर की संभावनाएं उसी प्रकार इंतजारी में हैं जैसे बीज में छिपा वृक्ष अपने विकास की प्रतीक्षा करता है। अतिमानसी चेतना मनुष्य के मन के भीतर छिपी हुई है। वह अब प्रकट होने के समीप है। मनुष्य अगर साधनापूर्वक उस चेतना को ग्रहण करने का प्रयास करे तो अतिमानसी चेतना अवश्य अवतीर्ण होगी और मनुष्य अपनी सभी समस्याओं का समाधान आप से आप पा लेगा।

श्री अरविंद ने आरोह और अवरोह दो सिद्धांतों पर जोर दिया है इवाल्यूशन और इनवाल्यूशन दो प्रक्रियाओं की बात कही है। जो छिपा हुआ है वही प्रकट होता है जो इनवाल्व्ड है उसी का विकास होता है। उसके मतानुसार इनवाल्यूशन के क्रम में अब

अतिमानस के अवरोह की बारी है। मनुष्य अगर आरोहण के लिए साधना करे तो अब वह अतिमानस को प्राप्त कर सकता है।

अगर पुरानी भाषा मे कहे तो आरोह मनुष्य के पुरुषार्थ का वाचक है। जब हम साधना करते हैं प्रयास करते हैं चेतना की खूटी के तारो को कसकर चेतना के आकाश मे ऊपर उठना चाहते हैं तब यह सारा प्रयास आरोह का पर्याय होता है। और अवरोह भगवान की करुणा करती है। अर्थात मनुष्य जब प्रयासपूर्वक अपने पात्र को निर्मल बना लेता है तब भागवत करुणा अवरोह करके उस पात्र मे उतर जाती है।

श्री अरविंद का विकासवादी सिद्धांत विज्ञान पर नही अध्यात्म पर आधारित है। इसी सिद्धात को पूर्ण करने के लिए उन्होने आरोह और अवरोह के सिद्धात निकाले होगे। यह कल्पना समीचीन मालूम होती है कि मैटर में जब पहला कपन आया होगा तब वह भगवदिच्छा से ही आया होगा। द्रव्य से जब जीवन निकला तब वह भगवान की कृपा से निकला था। और जीवन के भीतर से जब मन प्रकट हुआ तब वह भी ईश्वरीय कृपा का परिणाम था। इस न्याय से समझना तो यही चाहिए कि कालक्रम मे मन से भी अतिमन आप-से-आप प्रकट हो जायगा। किंतु स्थिति भेद से कर्तव्य भेद का न्याय यहा लागू होता है। पत्थर पानी पेड और पशु इस स्थिति में नही थे कि वे अपने विकास के लिए प्रयास करें अथवा अन्य किसी प्रकार से भागवत करुणा के साथ सहयोग करें। किंतु मनुष्य चूकि सोचने वाला प्राणी है इसलिए उसे आत्म विकास के लिए साधना करनी पडेगी योग करके भागवत करुणा का आह्वान करना होगा। इसीलिए श्री अरविंद ने यह कहा कि अतिमानसी धरातल की ओर बढ़ने की पहली शर्त यह है कि मनुष्य अपने मन को शात करे और सर्वतोभावेन भगवान के प्रति समर्पित हो जाय।

इस प्रकार दिखलायी यह पड़ता है कि आदमी पर वह दायित्व लादा गया जो बन्दर या पशु पक्षी पर लादा नही गया था। कारण स्पष्ट है। पशुओ की अपेक्षा मनुष्य की समस्याए अधिक जटिल हैं क्योकि उसे मन मिला हुआ है और वह सोच सकता है। यह भी कि अब कोई बदर आदमी नही बनेगा। अगला विकास अब मन के ही धरातल पर से होगा और मनुष्य की सारी समस्याओं का मूल उसके मन मे गडा हुआ है। अतएव श्री अरविंद का पहला उपदेश यह है कि अतिमानसी अवतरण की प्रक्रिया को मनुष्य तभी तीव्र बना सकता है जब वह अपने मन को शात कर ले। मनुष्य का अपने आपको ऊपर उठाने का यह प्रयास आरोह है। और अवरोह भागवत करुणा के अवतरण को कहते हैं।

इनवाल्यूशन के क्रम में भागवत करुणा सत् चित् और आनंद से उतरकर अतिमानस तक आती है और एवोल्यूशन के क्रम मे हम द्रव्य जीवन और चित्त से होकर मन तक पहुंचे हैं। मन और अतिमन के बीच एक आवरण है। सावित्री मे एक उक्ति आती है तुम्हारे और प्रभु के बीच अधकार का एक आवरण-मात्र है। इसे फाडकर अतिमन से एकाकार होने के लिए मनुष्य को मन की शांति प्राप्त करनी पडेगी भागवत करुणा का आह्वान करना पड़ेगा। यह अतिरिक्त बोझ उस पर इसलिए है कि वह न तो वृक्ष और पौधा है न पशु या मात्र जीव। एक बात और है कि पेड़ पौधे और पशु सोचने मे असमर्थ हैं।

इसीलिए वे विकास की प्रक्रिया मे रुकावट नहीं डालते। लेकिन मनुष्य के भीतर सोचने की शक्ति है और उसका सतत दोलायमान मन विकास की प्रक्रिया में बाधा डाल सकता है। अतएव मन को शात करके उसे विकास का निश्चेष्ट माध्यम बनना चाहिए।

यह भी ध्यान देने की बात है कि श्री अरविंद ने जन्मांतरवाद की तो चर्चा बहुत बार की है (क्योंकि विकासवाद का यह आवश्यक अग है) किंतु कर्मफलवाद की चर्चा बार-बार करने की आवश्यकता उन्हें नहीं हुई। हां इस बात पर उन्होने बहुत जोर दिया है कि मन के चचल रहन पर मनुष्य अतिमानसी शक्ति का पात्र नहीं हो सकेगा।

मनुष्य आधिभौतिक शक्तियो की संतान नही है वह प्रकृति की क्रिया और प्रतिक्रिया क योग स नही जनमा है न वह निर्जीव द्रव्य की संतति है। मैटर के भीतर जो चेतना निहित है वह प्रकट होने का प्रयास कर रही है। मनुष्य चेतना की उसी प्रक्रिया की संतान है और इसीलिए उसकी आध्यात्मिक सभावनाए भी अनंत हैं। जब जीवन के भीतर से मन प्रकट हुआ तब विकास एक निर्णायक स्थिति पर पहुंच गया। मनुष्य उसी निर्णायक स्थिति का प्रतिनिधि है। इस स्थिति से निकलकर वह विकास के अगले सोपानों पर पहुंचे यह स्वाभाविक भी है और अनिवार्य भी। अपनी नियति को पहचानना और उसे प्राप्त करने का प्रयास करना यह मनुष्य का ही विशेषाधिकार है।

इवोल्यूशन और इनवोल्यूशन के साथ श्री अरविंद ने इंटेग्रशन की भी बात कही है। मैटर से जब जीवन उत्पन्न हुआ तब जीवन के साथ मैटर भी बना रहा। यह इंटेग्रेशन था। जब जीवन के भीतर से मन प्रकट हुआ तब भी द्रव्य और जीवन दोनों मन के साथ रहे। इसीलिए जब मन के भीतर स अतिमानस प्रकट होगा तब भी द्रव्य जीवन और मन उसके साथ रहेगे।

जिसे श्री अरविंद ने अतिमानस कहा है वह भगवान की सत्य-चेतना का पर्याय है। अतिमानस विकास की प्रक्रिया म प्रकट होने के योग्य है यद्यपि वह उच्चतम कोटि की आध्यात्मिक चेतना है। द्रव्य जीवन और मन ये चेतना के निम्नस्तर के सोपान हैं। चेतना के उच्च स्तर को श्री अरविंद ने चार सोपानो में विभक्त किया है। ये हैं क्रमश उच्चतर मन प्रकाशित मन संबुद्ध मन और ओवर माइंड। अतिमानस का स्तर ओवर माइंड स भी ऊपर पड़ता है।

मन की सीमा से परे चार-पाच सोपानों का वर्णन श्री अरविंद ने इसलिए किया है कि मनुष्य समझ सके कि बुद्धि उसकी एकमात्र पूंजी नहीं है, उसके परे भी अनेक शक्तियां हैं जिनका उपयोग मनुष्य ने नहीं किया है या किया है तो बिरले लोगो ने किया है। यह सच है कि बुद्धि ने मनुष्य की बहुत बड़ी सेवा की है किंतु वही अब उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा भी है। बुद्धि जहा तक देख सकती थी वहां तक वह देख चुकी है। अब आगे की वास्तविकता की झाकी सबुद्धि (इनटुइशन) ले सकती है ओवर माइंड ले सकता है और अतिमानसी धरातल पर पहुचकर तो आदमी सर्वज्ञ बन जायेगा। कोरी बुद्धि की निंदा श्री अरविंद ने अनेक स्थानों पर की है। बुद्धि को उन्होने वह शक्ति कहा है जिसे कुछ भी मालूम नहीं है। किंतु बुद्धि की जो भर्त्सना उन्होने सावित्री काव्य मे की है वह शायद सबस कठोर है।

अगर बुद्धि ही सब कुछ है तो फिर दिव्य आनंद की सारी आशा छोड़ दो। क्योंकि बुद्धि सत्य के शरीर का स्पर्श कभी भी नहीं कर सकती न वह ईश्वर की आत्मा को देख सकती है। बुद्धि की पहुच केवल ईश्वर की छाया तक है वह ईश्वर की हंसी को नहीं सुन सकती।

यहां फिर वही समानांतर कथन सर जेम्स जीन्स का याद आता है। असली दीवार अदृश्य है। विज्ञान जिस कैनवास पर काम कर रहा है वह उस अदृश्य दीवार की छाया है। यह एक वैज्ञानिक की अनुभूति है और यही अनुभूति योग के द्वारा श्री अरविंद को भी प्राप्त हुई। ओनली हिज शैडो इट ग्रास्प्स नाट हियर्स हिज लाफ्स।

बुद्धि के आगे जो अधकार है वह बुद्धि के फाड़े नहीं फटेगा। और जब यह आवरण फट जायगा विचारक वहां नहीं होगा। तब केवल आत्मा देखगी और उस सब कुछ ज्ञात हो जायेगा। ज्ञान तभी जन्म लेता है जब बुद्धि की मृत्यु होती है।

अतिमानस के विकास को श्री अरविंद निश्चित मानते हैं। प्रकृति न मनुष्य के विकास की जो योजना बना रखी है उसमें अतिमानसी अवतरण का अटल स्थान है। अगर मनुष्य बुद्धि के धरातल से नहीं भागेगा तो बुद्धि उसका विनाश कर डालेगी जिसके लक्षण युद्ध विद्या के विकास में दिखायी भी पड रहे हैं। किंतु मनुष्य विनाश से बच निकलेगा क्योंकि बुद्धि के धरातल से ऊपर उठकर उसे उच्चतर धरातल पर पहुचना ही है। अतिमानस कोरी कल्पना नहीं वह मनुष्य की अगली मंजिल है उसकी नियति और गन्तव्य है।

जैसे जैसे विकास की प्रक्रिया आगे बढेगी मनुष्य अपनी भौतिक सीमाओं का अतिक्रमण करता जायेगा और उसका आध्यात्मिक रूप भी निखरता जायगा। किंतु आध्यात्मिक व्यक्तियों को उत्पन्न करके विकास यहीं रुकने वाला नहीं है। मानवीय विकास का लक्ष्य अध्यात्म की संपुष्टि नहीं बल्कि पूरे समाज का डिवीनाइजेशन है पूरे समाज को दिव्य बनाना है।

रूपांतरण

इसीलिए रूपांतरण का श्री अरविंद के सिद्धांत मे बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। रूपांतरण चैतिक आध्यात्मिक और अंत में अतिमानसिक होगा। अहं भाव का नाश इसे श्री अरविंद ने चैतिक अथवा साइकिक रूपांतरण कहा है। आनंद ज्योति और ज्ञान का मनुष्य के अंतर्मन में प्रवेश इसे वे आध्यात्मिक रूपांतरण मानते हैं। किंतु अतिमानसिक रूपांतरण सबसे कठिन है। उसके लिए आरोह और अवरोह दोनों अनिवार्य हैं। मनुष्य को अतिमानसिक धरातल तक पहुंचने के लिए प्रयास भी करना चाहिए और उस पर ऊपर से भागवत करुणा का अवरोह भी होना चाहिए। जब तक अतिमानस का अवतरण नहीं होगा मनुष्य का संपूर्ण रूपांतरण भी अवरुद्ध रहेगा। श्री अरविंद ने कहा है जब तक भागवत करुणा अपनी पूरी शक्ति के साथ नीचे नहीं उतरती मनुष्य का संपूर्ण रूपांतरण बिल्कुल असंभव है।

वैज्ञानिक विकासवाद इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता कि आखिर जड़ से चेतन की उत्पत्ति कैसे हुई न वह यही बता सकता है कि सृष्टि हुई क्या। वह शायद यह समझता है कि सृष्टि की रचना आकस्मिक घटना है कोई निरुद्देश्य कार्य है जो खुद ब खुद घटित हो गया है उसके पीछे किसी शक्ति की सुनियोजित योजना नहीं है। कोई आश्चर्य नहीं कि बहुत से दार्शनिक सृष्टि को अर्थहीन समझने लगे हैं एब्सर्ड मानने लगे हैं। किंतु श्री अरविंद कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है। जड़ में चेतन छिपा हुआ था। वही अपनी योजना के अनुसार विकास की लीला संपन्न कर रहा है। संसार की छोटी से छोटी और बड़ी से-बड़ी घटनाओं के पीछे उसका हाथ है। सृष्टि की प्रत्येक रेखा प्रत्येक वक्रता में कोई अर्थ है।

> सृष्टि की रचना संयोग (त्रास) की बेतरतीब ईंटों से नहीं हुई है। नियति का निर्माण करने वाला देवता चक्षुहीन नहीं है। जीवन की योजना किसी चेतन शक्ति ने बनायी है। इसकी प्रत्येक रेखा और हर एक कर्व (वक्रता) में कोई न कोई अर्थ है।

(सावित्री)

इसीलिए मैं मानता हू कि श्री अरविंद के योग में भक्ति की पूरी गुंजाइश है क्योंकि भक्ति को छोड़कर मनुष्य के पास और कौन साधन है जिसके द्वारा वह भगवत्कृपा का आह्वान करे? भगवत्कृपा की पात्रता आत्म समर्पण से आती है गुरु कृपा से आती है और श्री मां के आशीर्वाद से आती है। हां श्री अरविंद का यह कहना सत्य है कि भक्ति की पूर्णता तब है जब वह कर्म और ज्ञान भी बन जाय।

जब अतिमानसी ज्योति मनुष्य के भीतर प्रवेश करेगी तभी मनुष्य सच्चे अर्थों में अध्यात्मजीवी या नास्टिक बीग के रूप में बदल सकेगा। अध्यात्मजीविता को प्राप्त करना व्यक्ति की चरम पूर्णता है यही उसका चरम विकास भी है।

अध्यात्मजीविता पहले कुछ लोगों को ही प्राप्त होगी। किंतु ये कुछ लोग ही नाभिक होंगे जिनके प्रभाव से सारा समाज अध्यात्मजीवी बन जायगा।

श्री अरविंद ने कोई अवधि नहीं बतायी है कि यह रूपांतरण कब तक संपन्न होगा। किंतु यह बात उन्होंने अवश्य कही है कि यह रूपांतरण चमत्कार से घटित नहीं होगा न यह अचानक आयगा। यह कल्पना मनुष्य के देवत्व की कल्पना है। उसकी प्रगति शनै शनै के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकती है

> कितनी धीमी गति है! विकास
> जितना अदृश्य हो चलता है
> इस महा वृक्ष मे एक पत्र
> सदियों के बाद निकलता है।

(रश्मिरथी)

इस अध्यात्मजीवी मनुष्य अथवा अतिमानव के लक्षण क्या होंगे इस बारे में भी कई लोगों ने अनुमान लगाये हैं। शायद उसकी सज्ञाएं पांच से अधिक हो जाय। शायद वह अमर

हो जाय। श्री अरविंद स्वयं सोचते थे कि अतिमानसीकृत मानव को भोजन की आवश्यकता नहीं होगी। संभव है वह कास्मिक ऊर्जा से अपनी पुष्टि ग्रहण कर ले। किसी किसी ने यह अनुमान भी लगाया है कि अमरता का अर्थ स्वच्छाकरण होगा। जब आज का आदमी वस्त्र के पुराना होने पर उसे छोड़ देता है तब अतिमानव भी शरीर के पुराना पड़ने पर उसका त्याग ही करेगा।

ये सब-के सब अनुमान हैं। अगर हम प्रमाण चाहते हो तो हमे सावित्री की शरण जाना पड़ेगा।

अमरता के लोक से आकर पृथ्वी पर उपनिवेश बसाने वाला सम्राट।

धरती पर उसकी आत्मा स्वर्ग के प्रतिनिधि के रूप म निवास करती थी।

उसका प्रत्येक कार्य अपने पीछे एक पदचिह्न छोड़ता था जो किसी देवता का पदचिह्न था।

वह अपनी सुंदरता और अपने आनद का आप ही कलाकार था।

हमारे मर्त्य दैन्य के बीच वह अमरता का साकार रूप था।

जो मानस ससीम था वह निस्सीम प्रकाश बन गया।

रूप की छलना म न फसकर वह सीधे आत्मा को देख लेता था।

अपने विचार वह दूसरो के भीतर सुनता था। उसका आतरिक व्यक्तित्व दूसरो क व्यक्तित्व से एकाकार था।

जब मानव समाज अध्यात्मजीवी हो जायगा तब सबकी चेतना सबकी चेतना से एकाकार हो जायगी और आज सभ्यता जिस त्रास से पीडित है जिस सघर्ष स छिन्न भिन्न है जिस मृत्यु से डरी हुई है वे सब क सब समाप्त हो जायेग। मनुष्य क भीतर न ईर्ष्या होगी न दर्प होगा न कीर्ति की कामना होगी न प्रभुत्व जमाने का लोभ होगा।

यह स्वप्न इतना सुदर है कि लगता है वह सच नही होगा। पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कल्पना अनक बार की गयी है किंतु वह यूटोपिया बनकर रह गयी है। क्या श्री अरविंद का विकासवादी सिद्धात भी यूटोपिया बनकर ही रह जायेगा? आशा केवल इस बात से बधती है कि अन्य यूटोपियाओ क कर्त्ता केवल मेधावी चितक थ किंतु श्री अरविंद की असली विशेषता यह थी कि वे योगी थे। उन्होने जो कुछ लिखा होगा देखकर लिखा होगा केवल सोचकर नही।

श्री अरविंद के दर्शन का मूल वेदात मे है। वेदात तो सारे संसार क सामने पडा हुआ था किंतु किसी को यह सूझा ही नही कि जड को भी चेतन और सत्य मानकर वह शकर के मायावाद को अमान्य कर दे। यह साहसपूर्ण सूझ श्री अरविंद मे प्रकट हुई और एक ओर जहा उन्होने मायावाद को अमान्य कर दिया वहा दूसरी ओर उन्होने विकासवादी वैज्ञानिकों को भी इस खोयी हुई कडी का सधान दे दिया कि आखिर सृष्टि बनी क्या। सृष्टि बनी इसलिए कि जड क भीतर चेतन प्रच्छन्न था और वह अपनी पूर्णावस्था को पहुचना चाहता था। मन के स्तर तक वह पहुच गया है। किंतु वह यहीं नहीं रुकेगा। वह सच्चिदानद की ओर जा रहा है।

उपनिषदों में से श्री अरविंद दर्शन की लगभग पूरी समानता तैत्तिरीय उपनिषद के साथ बैठती है। तैत्तिरीय में ही भृगु की वह कथा आती है जिस पर से अन्नमय प्राणमय मनोमय और विज्ञानमय कोशों की कल्पना की गयी है। भृगु महर्षि वरुण के पुत्र थे। एक दिन भृगु ने अपने पिता से कहा मुझे ब्रह्म की शिक्षा दीजिए।

वरुण ने कहा ब्रह्म को जानने के साधन अन्न प्राण चक्षु श्रोत्र मन और वाक् हैं। जिसमें से सबकी उत्पत्ति होती है जिसके बल में सबका अस्तित्व है और जिसमें सब विलीन हो जाते हैं वही ब्रह्म है।

भृगु ने ब्रह्म को जानने के लिए तप किया और तब पिता के पास आकर वे बोले अन्न ब्रह्म है अर्थात मैटर ब्रह्म है। पिता ने कहा तुम और तप करो।

दूसरी तपस्या के बाद भृगु ने पिता से आकर कहा प्राण ब्रह्म है। पिता ने कहा और तप करो।

तीसरी तपस्या के बाद भृगु ने कहा मन ब्रह्म है। पिता ने उन्हें फिर तपस्या करने का आदेश दिया।

चौथी तपस्या के बाद भृगु को अनुभूति हुई कि विज्ञान ब्रह्म है। और पाचवी तपस्या के बाद उन्हें बोध हुआ कि आनंद ब्रह्म है।

इस कथा से जो चित्र बनता है वह यह है कि सृष्टि के निम्नतम स्तर पर जो वस्तु जडवत् पड़ी है चेतना उसके भीतर भी विद्यमान है। इसीलिए पहली खोज में भृगु ने अन्न को ब्रह्म मान लिया। इस निम्नतम स्तर से चेतना ज्यो ज्यो विकास पाती हुई ऊपर की ओर बढ़ती है त्यो-त्यो क्रमश प्राण मन और विज्ञान प्रकट होते हैं। चेतना का चरम विकास आनंद है जो ब्रह्म का स्वरूप है।

जिसे श्री अरविंद अतिमानस कहते हैं वह कदाचित् वही धरातल है जिसे तैत्तिरीय ने विज्ञान कहा है। हा मन और अतिमन के बीच श्री अरविंद ने उच्चतर मन प्रकाशित मन सबुद्ध मन और ओवरमाइंड के नाम से जो चार सोपान बताये हैं वह उनकी अपनी उदभावना है।

श्री अरविंद आश्रम का वास्तविक आरंभ सन् १९२६ ई से माना जाता है। उस साल अपने जन्म दिवस के अवसर पर श्री अरविंद ने इस विषय को स्पष्ट करने के निमित्त एक छोटा-सा वक्तव्य दिया था कि उनके योग का वास्तविक उद्देश्य क्या है?

हमारे योग का वास्तविक उद्देश्य एक चेतना को एक शक्ति को एक प्रकाश को एक वास्तविकता को ऊपर से उतारकर नीचे लाना है। यह शक्ति उस चेतना से भिन्न है जिसे पाकर पृथ्वी के सामान्य जीव सतुष्ट हो जाते हैं। यह सत्य है कि यह चेतना यह शक्ति सत्य की यह ज्योति यह भागवत सत्ता पार्थिव चेतना को ऊपर उठायगी और यहां जो कुछ भी है उसका रूपातरण कर देगी।

याद रखो कि अन्य योगो के जो अंतिम उद्देश्य हैं वे हमारे लिए प्रथम सोपान हैं पहली शर्तें हैं। पुराने समय में यदि योगी को ब्रह्मचेतना की अनुभूति हो जाती थी उसके भीतर कोई ज्योति या शक्ति उतर आती थी अथवा अज्ञात लोक की कोई किरण कौंध जाती

थी तो वह इतने में संतुष्ट हो जाता था। यदि मन को कोई आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त हो जाती थी अथवा प्राणिक तत्त्व का संपर्क मन के साथ हो जाता था तो योगी इतने को ही पर्याप्त समझ लेता था। उस समय निश्चलता की स्थिति को ही योगी मोक्ष अथवा परम ध्येय मान लेते थे।

इस स्थिति की अनुभूति परम सत्ता के प्रति अपने अंतःकरण को खोल देना अज्ञात लोक की झलक और अनुभूतियां प्राप्त करना अहं की स्थिति से ऊपर उठ जाना सार्वभौम मानस और सार्वभौम आत्मा का अनुभव प्राप्त करना ये तो हमारे योग की पहली शर्तें हैं।

हमारा ध्येय तो यह है कि हम महत्तर चेतना को पुकारकर प्राणिक स्तर पर लाये शारीरिक स्तर पर उतारे जिससे मूल से शिखर तक सर्वत्र परम शांति और सार्वभौमता पूर्ण रूप से व्याप्त हो जाय। अगर यह संभव नहीं हुआ तो रूपांतरण की पहली शर्त ही अधूरी रह जायगी।

जब तक प्राण का रूपांतरण नहीं होता तब तक मन का रूपांतरण होगा ही नहीं। अनुभूतियां तो प्राणिक जीव को ही प्राप्त होती हैं। अगर प्राणिक स्तर रूपांतरित नहीं हुआ तो रूपांतरण किसी भी स्तर का नहीं होगा।

और प्राणिक के संपूर्ण रूपांतरण के लिए यह आवश्यक है कि शारीरिक जीव भी परिवर्तित हो वह भी भगवान की ओर उन्मुख और उन्मुक्त हो। जब तक जीवन के परिवेश अयोग्य हैं तब तक प्राणिक जीव भी भागवत अनुभूति में असमर्थ रहेगा।

साथ ही शरीर के भीतर जो सूक्ष्म शरीर है वह तब तक नहीं रूपांतरित होगा जब तक बाहरी शरीर यानी बाह्य मनुष्य परिवर्तित न हो जाय। हमारा योग सपूर्णता का योग है और इसके अंदर प्रत्येक भाग अन्य सभी भागों पर निर्भर करता है। इसलिए लक्ष्य से इधर ठहर जाने का यह अर्थ तो हो सकता है कि अभी हम अगले जीवन की तैयारी कर रहे हैं किंतु इसका अर्थ विजय नहीं है।

कोई पक्ष स्थायी रूप से रूपांतरित हो इसके लिए आवश्यक है कि सभी पक्ष रूपांतरित हो जायं।

क्या श्री अरविंद अकेले है?

जब तक परमाणु का भंजन नहीं हुआ था भौतिकी का विश्वास था कि द्रव्य कोई ठोस पदार्थ है। किंतु परमाणु के टूटने के बाद दिखायी यह पड़ रहा है कि द्रव्य भी शून्य स्पेस ही है। न्यूटन मानते थे कि प्रकाश कण है। नयी भौतिकी कहती है कि प्रकाश कण भी है और तरंग भी।

भौतिकतावादी यह भी मानते थे कि देश और काल की सत्ताए अलग-अलग और स्वतंत्र हैं। किंतु नयी भौतिकी समझती है कि बात एसी नही है। देश और काल कही न कहीं जाकर एक हो जाते हैं। उनकी सत्ता एक है और उसी एकता मे से हमारे मन ने अपनी सुविधा के लिए देश और काल को अलग-अलग कर लिया है।

नयी भौतिकी को यह भी पता चला है कि विद्युत और चुबक की शक्तिया वास्तविक नही हैं वे हमारे मन की कल्पनाए हैं। गुरुत्वाकर्षण की शक्ति ऊर्जा और मोमेंटम के सिद्धांत सब के सब हमारे मन की रचनाए हैं।

भौतिकी का हर ऊचा सिद्धांत अब गणित की भाषा मे बोल रहा है। किंतु पहले वह इंजीनियर और मेकेनिक की भाषा बोलता था। गणित शरीर नहीं मन है।

इन कई उदाहरणो से मै जिस बात का रेखाकिंत करना चाहता हू यह यह है कि विज्ञान अब भौतिकता से निकलकर मानसिकता की ओर बढ रहा है मटेरियलिज्म से आगे मेंटलिज्म मे प्रवेश कर रहा है।

विज्ञान मे मेंटलिज्म की प्रवृत्ति बढ रही है केवल इतने से अरविंद-दर्शन का समर्थन नही होता। यह दर्शन तो मन के अतिक्रमण का दर्शन है। फिर भी यह बात ध्यान देने के योग्य है कि उच्च मन प्रकाशमान मन और सबुद्ध मन का स्वभाव शरीर के स्वभाव से नहीं मन के ही स्वभाव से मिलता है। श्री अरविंद मन से ऊपर जाने की राह दिखाते थे विज्ञान शरीर से ऊपर उठकर मन की ओर जा रहा है। और मन शरीर की अपेक्षा आत्मा के अधिक समीप है। संभव है जिस प्रकार श्री अरविंद ने बुद्धि और मन को असमर्थ मानकर अति मन का अनुसंधान किया उसी प्रकार विज्ञान को भी यह स्वीकार करना पड़े कि सृष्टि का जो परम रहस्य है वह बुद्धि से जाना नहीं जा सकता न केवल बुद्धि से मनुष्य अपनी समस्याओं का समाधान पा सकता है।

सच तो यह है कि विज्ञान बुद्धि की असमर्थता को स्वीकार करे या नहीं उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के कई दार्शनिकों ने उसे स्वीकार कर लिया है। इसीलिए बुद्धि की जगह अबुद्धि और रीजन के बदले अनरीजन की चर्चा अब आम होने लगी है। यह और कुछ नहीं उन आशाओं के विफल होने का परिणाम है जो आशाएं मनुष्य ने बुद्धिवाद से लगा रखी थीं। बुद्धि सहायिका थी बुद्धि ही अब शाप बन गयी। आज संसार ध्वंस के कगार पर खड़ा है। इसकी जिम्मेदारी बुद्धि पर डाली जाय या अध्यात्म पर?

बुद्धि की वैसी तीव्र आलोचना श्री अरविंद ने की है वैसी ही आलोचना पास्कल और किर्कगार्ड ने भी की थी। और उन्होंने भी समाधान यही दिया था कि बुद्धि का विकल्प यह है कि मनुष्य ईश्वर के उस रूप पर श्रद्धा रखना सीखे जिसका आख्यान बाइबल ने किया है।

फ्रांस के प्रकांड दार्शनिक हनरी बर्गों भी बुद्धि को अनुपयोगी और असमर्थ मानते थे। उनका मत यह था कि इनट्यूईशन या सद्बुद्धि का विकास किये बिना मनुष्य का उद्धार नहीं होगा। यह बड़ी ही अद्भुत बात है कि जो भी चिंतक बुद्धि की असमर्थता को समझ लेता है वह श्रद्धा की ओर चला जाता है। बर्गों का भी मत था कि मनुष्य की अंतिम नियति यह है कि वह जीवन धारा के साथ मिल जाय ईश्वर के साथ एकाकार हो जाय।

मार्टिन हेडेगर और श्री अरविंद समसामयिक थे किंतु एक दूसरे को वे नहीं जानते थे। फिर भी हेडेगर का चिंतन श्री अरविंद के चिंतन से मेल खाता है। तर्क बुद्धि को हेडेगर भी अपर्याप्त मानता है। वह भी कहता है कि कथन साधन से हम सत्य को नहीं पा सकते। सत्य वह है जिसे हम जी सकते हैं जिसकी हमें अनुभूति प्राप्त होती है। वैयक्तिक भाव को हेडेगर भी हेय मानता है। उसका भी विचार है कि पृथ्वी का रूपांतरण ही मनुष्य के सामने एकमात्र उपाय है। जिसे श्री अरविंद अध्यात्मजीवी मनुष्य कहते हैं उसे हेडेगर ने आथेंटिक बीग यानी प्रामाणिक जीव कहा है।

विकास की प्रक्रिया यांत्रिक है अर्थात वह एक निरुद्देश्य प्रवाह है इस स्थापना को स्वीकार करने में आधुनिक विकासवादियों को दुविधा होने लगी है। हनरी कोंडरयुड ने (इवाल्युशन एंड मैंस प्लेस इन नेचर में) लिखा है कि भासित यह होता है कि परिवेश की अपनी सीमाएं हैं और विकास अपनी पूर्णता पर तब पहुंचेगा जब उसके लिए आंतरिक प्रयास किया जाय। अर्थात विकास का क्रीडाक्षेत्र अब शरीर नहीं चेतना है। मनुष्य प्रकृति के भरोसे निश्चिंत नहीं बैठ सकता परिवेश की सीमाओं से बाहर निकलने के लिए उसे भीतर से जोर लगाना होगा।

यह बात हनरी बर्गों ने भी लिखी है कि भौतिकी एवं रसायनशास्त्र के नियमों से सारा जीवन परिमापित नहीं किया जा सकता। लगता है विकास के आरंभ से ही चेतना विद्यमान रही है।

इस संबंध में श्री अरविंद-दर्शन का सबसे अधिक समर्थन पियर टेलहार्ड द चार्डिन में मिलता है। उन्होंने द फेनामेनन आव मैन नामक अपनी पुस्तक में विकास की अनेक संभावनाओं पर विचार किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि विकास की यात्रा चेतना

की ओर है पूर्ण चेतना की ओर है। प्रकृति निर्जीव पदार्थ नही है। वह चेतन और सजीव है। समाज एक दिन अपने नाना सघर्षों नाना विपत्तिया और समस्त रोगो से अवश्य मुक्त हो जायगा।

किंतु टेलहार्ड का मत है कि यह सब विज्ञान ही सपन्न करेगा जब कि श्री अरविंद समझते हैं कि आगे का विकास केवल आध्यात्मिक चेतना के विकास से पूर्ण होने वाला है। टेक्नालजी की बुद्धि मनुष्य की बुद्धि से आगे बढ़ गयी है। मनुष्य मे वह नैतिकता चाहिए वह आध्यात्मिक सामर्थ्य चाहिए जो विज्ञान से उत्पन्न शक्तियो को सभाल म रख सके। और यह सामर्थ्य उस चेतना के आध्यात्मिक रूपातरण से ही प्राप्त होगी।

इधर श्री अरविंद की तुलना गुरजिएफ और उनके शिष्य औस्पैस्की स भी की जाने लगी है। गुरजिएफ पडित कम सत अधिक थे। किंतु औस्पैंस्की कठोर तार्किक और बहुत बडे विद्वान थे। गुरजिएफ ने भी अध्यात्मजीवी मनुष्य की कल्पना की है और इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्य को चाहिए कि वह सब से पहले अपने-आपको पहचाने। इससे श्री अरविंद का इतना ही समर्थन प्राप्त होता है कि मनुष्य का अगला विकास अध्यात्म की दिशा म है। औस्पैस्की ने इसी सभावना को गूढ़ तर्कों से सिद्ध किया है। लेकिन औस्पैस्की के विषय म एक लेखक (श्री केनेथ वाकर ने) यह कह डाला है कि उनके भीतर आध्यात्मिक दृष्टि की वह प्रामाणिकता नही मिलती जिसके दर्शन हमे श्री अरविंद मे होते हैं। किंतु गुरजिएफ सिद्ध पुरुष थे यह बात ससार के अनेक अध्यात्म प्रेमी मानते हैं। यूरोप केवल टेक्नाक्रेसी का महादेश नही है वहां भी आध्यात्मिक सिद्ध जन्म लेते हैं। यहा अलेकसिस केरल की याद आना स्वाभाविक है। उनकी दो पुस्तक मैन द अननान और रफ्लेक्शस आन लाइफ बहुत प्रसिद्ध हैं। केरल सर्जन यानी वैज्ञानिक थे और वैज्ञानिक विश्लेषण क द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुचे थे कि सारी सभ्यता विनाश की ओर जा रही है। वह बचायी तभी जा सकती है जब मनुष्य की बुद्धि का विकास हो मनुष्य मैटर के साथ स्पिरिट की ओर भी जाय और उन गुणों को वापस लाय जो धर्म के साथ विकसित हुए थ। बुद्धिवाद के नाम पर परपरा की खिल्ली उड़ाकर मनुष्य ने अपने लिए विपत्ति अर्जित कर ली है।

अक्सर कहा जाता है कि श्री अरविंद ने सुपरमैन अथवा अतिमानव की कल्पना नीत्से (मृत्यु १९०० ई) से उधार ली होगी। यह बात गलत भी है और ठीक भी। ठीक वह इसलिए है कि सुपरमैन शब्द का प्रयोग श्री अरविंद से पूर्व नीत्से न ही किया था। और गलत वह इसलिए है कि नीत्से की कल्पना का सुपरमैन श्री अरविंद की कल्पना के सुपरमैन से उतना ही भिन्न है जितना भिन्न राक्षस देवता से होता है। नीत्से का सुपरमैन वह है जो सबको मारपीट और दबाकर आगे निकल जाता है। नीत्से ने जिस सुपरमैन का सपना देखा था उसका मूर्त रूप हिटलर म दिखायी पडा। किंतु श्री अरविंद का सुपरमैन नास्तिक योग होगा अध्यात्मजीवी मनुष्य होगा जो समाज को दबाकर अपना अनुगामी नहीं बनायगा प्रत्युत उसे अपने तेज अध्यात्मबल और चरित्र स प्रभावित करके रूपांतरित करेगा। हां इस बात में नीत्से और श्री अरविंद एकमत जरूर हैं कि ससार को उठाकर यदि सचमुच किसी उच्चतर धरातल पर ले जाना है तो यह कार्य किसी उच्चतर नूतन मानव जाति क

द्वारा ही संपन्न किया जा सकता है उन लोगों के द्वारा नहीं जो अपनी वैयक्तिक मुक्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं।

फिर भी नीत्से और श्री अरविंद के दो-एक मुहावरों में कुछ साम्य अवश्य है। श्री अरविंद ने अतिमानस के अवतरण के प्रसंग में कहा था कि यह वह कदम है जिसके लिए सारा विकास तैयारी मात्र था। और नीत्से ने भी कहा है कि मानवता का सारा इतिहास अतिमानव का जन्म दिन की तैयारी भर है। नीत्से ने यह बात भी बार-बार कही थी कि मनुष्य वह वस्तु है जिसका अतिक्रमण होना है।

सुपरमैन शब्द का तो नीत्से ने प्रयोग अवश्य किया था किंतु सुपरमाइंड अथवा सुपरामेंटलाइज्ड बीग की कल्पना उसे नहीं सूझी थी। और वह उसे सूझती भी कैसे? वह तो मानता था कि मैं बिलकुल शरीर हूं और शरीर से अधिक कुछ भी नहीं हूं।

नीत्से ने उन लोगों पर व्यंग्य किया है जो स्वर्ग के लोभ में शरीर को दंडित करते हैं। यह बात उसे फिर श्री अरविंद के समीप ला देती है। लेकिन नीत्से ने यह भी कहा था कि युद्ध अगर वीरता से लड़ा जाय तो जिस ध्येय के लिए वह लड़ा जाता है वह ध्येय पवित्र हो जाता है। मेरा खयाल है अरविंद-दर्शन के आलोक में यह उक्ति घृणित समझी जायगी।

यहां हमारे भीतर यह जिज्ञासा स्वभावतः ही उठती है कि मार्क्सवादी दर्शन के साथ श्री अरविंद के विचारों का कहीं कोई मेल है या नहीं। शंकर मैटर को माया समझते थे किंतु श्री अरविंद उसे सत्य मानते हैं, इस बात को लेकर मार्क्स और श्री अरविंद के बीच एक हलकी झाईं भर समता जरूर दिखायी देती है। लेकिन यह कुछ नहीं है क्योंकि मार्क्स आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानते हैं। वैसे श्री अरविंद ने एक बार कहा था कि मैं भी अपने को कम्युनिस्ट समझता हूं किंतु यूरोप में समाजवाद के जो प्रयोग हुए हैं वे मुझे पसंद नहीं हैं। अन्यत्र भी उन्होंने कहा है

> जैसे भ्रातृत्व की भावना ईर्ष्या द्वेष और पारस्परिक वध की भावना से श्रेष्ठ है वैसे ही साम्यवादी सिद्धांत भी व्यक्तिवाद के सिद्धांत से श्रेष्ठ माना जायगा। लेकिन यूरोप में समाजवाद की जो योजनाएं आविष्कृत की गयी हैं वे जेल हैं अत्याचार हैं बैल के कंधे पर जुए के समान हैं।

एक बार और उन्होंने कहा था

> पृथ्वी पर सही तौर पर साम्यवाद की स्थापना तभी संभव है जब उसका आधार आत्मा का भ्रातृत्व और अहंभाव की मृत्यु हो।

मेरा खयाल है श्री अरविंद-आश्रम में सामूहिक जीवन का जो प्रयोग चल रहा है वह इसी आध्यात्मिक साम्यवाद का प्रयोग है। आपद्धर्म के रूप में श्री अरविंद रूसी प्रयोग की भी उपयोगिता स्वीकार करते थे। उन्होंने कहा था कि रूसी प्रयोग यदि नहीं हुआ होता तो मानवता का अनुभव अधूरा रह जाता।

श्री अरविंद की मजेदार तुलना उर्दू और फारसी के कवि मोहम्मद इकबाल के साथ

की जा सकती है। इकबाल पर नीत्से और हेनरी बर्गसों का पूरा प्रभाव था। बुद्धि की आलोचना उन्होंने बर्गसों से सीखी होगी अथवा संभव है बर्गसों और भारतीय वेदांत दोनों का उन पर प्रभाव रहा हो। बुद्धि के मार्गदर्शन में चलाना इकबाल को बिलकुल पसंद नहीं था वे दिल की रहनुमाई का यकीन करते थे। बर्गसों की भाषा में अगर इकबाल के दिल का अनुवाद किया जाय तो वह इनट्यूइशन ही समझा जायेगा।

गुजर जा अक्ल से आगे कि यह नूर
चिरागे-राह है मंजिल नहीं है।

इससे भी कड़ी बात इकबाल ने यह कही।

जो अक्ल का गुलाम हो वो दिल न कर कबूल।

बुद्धिवाद की अंध उपासना करते-करते यूरोप सर्वनाश के जिस कगार पर पहुंच गया है उसके आसार इकबाल को अपने यूरोपीय प्रवास के समय दिखायी पड़ गये थे और पश्चिमी जगत को चेतावनी देते हुए उन्होंने लिखा था

तुम्हारी तहजीब अपने खंजर
से आप ही खुदकुशी करेगी।
जो शाखे-नाजुक पे आशियाना
बनेगा नापायदार होगा।

एक तरह के विकासवाद की कल्पना इकबाल ने भी की थी और वह कल्पना भी आध्यात्मिक चेतना के विकास पर ही आधारित है। हजरत मोहम्मद ने कहा था तखल्लकुबी अखलाक अल्लाह। अर्थात् अपने भीतर अल्लाह के एखलाक अथवा ईश्वर के गुणों को धारण करो। इस पर से इकबाल ने यह सिद्धांत निकाला कि आदमी जब तक अल्लाह के समान नहीं बनता तब तक उसका व्यक्तित्व पूर्ण नहीं होगा। जो आदमी अल्लाह से जितनी दूर है वह उतना ही अधूरा है। जो अल्लाह के सबसे नजदीक आ गया उसी का व्यक्तित्व सबसे अधिक पूर्ण होता है। लेकिन ऐसा व्यक्ति ईश्वर में लीन नहीं होता बल्कि ईश्वर ही उसमें लीन हो जाता है।

काफिर की ये पहचान कि आफाक में गुम है।
मोमिन की ये पहचान कि गुम इसमें है आफाक।

यही नहीं बल्कि इकबाल ने यहां तक कह डाला है

खुदी को कर बुलंद इतना
कि हर तकदीर के पहले
खुदा बंदे से खुद पूछे
बता तेरी रजा क्या है।

यानी उच्चतम विकास पर पहुंचे हुए व्यक्ति की पहचान यह है कि उसकी इच्छा भगवान की इच्छा में विलीन नहीं होती भगवान की ही इच्छा उस भक्त की इच्छा में

विलीन हो जाती है। मेरा खयाल है इस शेर के पीछे कहीं-न-कहीं ईश्वर-हता नीत्से का प्रभाव काम कर रहा है। अथवा यह भी संभव है कि इस शेर के पीछे उस सूफियाना अनुभूति की प्रेरणा हो जिसकी मस्ती म आकर कबीर ने कहा था

समुंद समाना बूंद में कबिरा गया हेराय।
अथवा
अलह गम की गति नहीं तहं घर किया कबीर।
या
पाछे-पाछे हरि फिरैं कहत कबीर-कबीर।

यही इकबाल का पूर्ण मनुष्य है। जिस श्री अरविंद न अपनी कल्पना का अतिमानव माना है, इकबाल अपनी कल्पना के अनुसार उसे नायबे-इलाही कहते हैं। लेकिन नीत्से की कल्पना का सुपरमैन इन दोनों कल्पनाओं से भिन्न है। श्री अरविंद और इकबाल अध्यात्मजीवी मनुष्य की राह देख रहे हैं किंतु इतिहास न साबित कर दिया है कि नीत्से हिटलर की राह देख रहा था। नीत्से का जोर गलत जगह पड़ गया। अन्यथा वह अपनी इस कल्पना के लिए अवश्य वंदनीय है कि मनुष्य का विकास अधूरा है उसे अपने आपका अतिक्रमण करना चाहिए।

किंतु इकबाल हमेशा नायबे-इलाही की कल्पना में मस्त नहीं रह सके। नीत्से का फार्म अपनाकर व उसके विचारों से मुक्त रहने की कोशिश में थे लेकिन यह कोशिश हमेशा कामयाब नहीं हुई। मुसलमानों को उन्होंने संत नहीं बाज बनने का उपदेश दिया और सुनाकर कहा

झपटना पलटना पलटकर झपटना
लहू गर्म रखने का है इक बहाना।
तथा
जो कबूतर पर झपटने में मजा है अय पिसर
वो मजा शायद कबूतर के लहू में भी नहीं।

जब भारत में सांप्रदायिक दंगे हो रहे थे उस समय ऐसी पंक्तियां नीत्से का कोई सच्चा शिष्य ही लिख सकता था।

लेकिन आदम को स्वयं भगवान ने बनाया था या वे विकास के क्रम में खुद-ब-खुद उत्पन्न हुए इस विषय में इकबाल ने विकासवाद को नहीं माना है और स्पष्ट कहा है कि आदम ईश्वर के निर्माण थे। आदम जब स्वर्ग से उतर रहे थे तब पृथ्वी ने क्या कहकर उनका स्वागत किया था इस विषय पर इकबाल ने एक बहुत अच्छी कविता लिखी

खोल आंखें जमीं देख फलक देख फिजा देख
मशरिक से उभरते हुए सूरज को जरा देख।

उस जलवए बेपरदा को परदों में छिपा देख
एयामे जुदाई के सितम देख जफा देख।

इत्यादि।

सभ्यता किसी न किसी सकट स घिरती जा रही है इसका अनुभव प्राय अधिकाश चिंतको का हो रहा है मगर यह कोई नहीं बताता कि इसका कारण क्या है और इस सकट से बचने का क्या उपाय है। इस सक्ट की अनुभूति आस्वाल्ड स्पेंगलर को हुई थी जिसने डिक्लाइन आव द वस्ट लिखकर सारे ससार को चौका दिया था। इस सकट की अनुभूति के प्रमाण हम टी एस इलियट और अल्डुस हक्स्ले म भी पाते हैं। गाव-मटोत ढंग से इस सकट का आभास महात्मा गाधी को भी हुआ था। शायद इसी कारण व विज्ञान और टक्नालाजी को शंका से दखते थे। विज्ञान और टेक्नालाजी पर कुछ थोड़ी शका श्री अरविंद को भी थी जिसका आभास हम उनकी दो-एक कविताओं स मिलता है।

लकिन विज्ञान और टेक्नालाजी को मनुष्य छोड दे यह बात न तो सभव है न वाछनीय। विज्ञान और टक्नालाजी को छोड़कर उनस आग भागन का काम वैसा ही काम होगा जिसे श्री अरविंद ने रिफ्युजल आव् द ऐसटिक (वैरागी का त्याग) कहा है। श्री अरविंद का उद्देश्य मनुष्य को वैराग्य सिखाना नहीं है। न यही खतरा है कि अतिमानस म पहुचकर मनुष्य क मन का नाश हो जायगा और विज्ञान को वह खो बैठेगा। श्री अरविंद क योग म नाश या निराय किसी भी तत्त्व का नहीं होता। अपने योग व विषय म तो उन्होन स्पष्ट कहा है कि हमारे योग का ध्येय आत्मविलय नही आत्मपूर्णता है। इसक सिवा श्री अरविंद के सिद्धांत में इवोल्यूशन और इनवाल्यूशन के साथ इंटेग्रेशन की शर्त भी मौजूद है। जीवन क उत्पन्न होने के बाद भी द्रव्य जीवन के साथ है और मन के उत्पन्न होन पर भी द्रव्य और जीवन दोनों मन के साथ हैं। इसी प्रकार अतिमानस के अवतरण के बाद भी मानस या मन मनुष्य को उपलब्ध रहेगा और विज्ञान की प्रक्रिया चलती रहेगी।

एक संसार वह था जिसमें मनुष्य आत्मा की सत्ता मे विश्वास करता था। एक ससार वह है जिसम वह विज्ञान और टक्नालॉजी को पूज रहा है पूज रहा है और मन ही मन भय से काप रहा है। अभी-अभी एक लेखक ने यह सुझाव दिया है कि मनुष्य को चाहिए कि वह नयी दुनिया के सभी सरो सामान के साथ पुरानी दुनिया म वापस लौट जाय। इस प्रकार दो संसारो क मिलन से एक तीसरा ससार जनमगा जिसमें पुराने ससार की आस्तिकता भी होगी और नय ससार का विज्ञान भी। फिर ऐसा होगा कि या तो मनुष्य उस आविष्कार ही नहीं करेगा जिसे वह सभाल न सके या विज्ञान जिन शक्तियो का आविष्कार करगा मनुष्य उन्ह अपन काबू म रख सकगा।

यह और कुछ नही श्री अरविंद के विचारो को समझ बिना उनके इर्द गिर्द चक्कर काटना है। मनुष्य को पुरानी दुनिया में लौटने की जरूरत नहीं है। उस इसी नयी दुनिया मे बैठे-बैठे यह समझ लेना है कि मैटर निर्जीव नहीं था। जीवन और मन उसक भीतर छिप हुए थे जो कालक्रम म प्रकट हो चुके हैं। किंतु मैटर क भीतर और भी शक्तियां प्रच्छन्न हैं और वे प्रत्यक्ष की जा सकती हैं। उच्चतर मन प्रकाशित मन संबुद्ध मन और अबर तथा सुपर

कविता तब स्वत प्रवाहित होकर आराम से बहने लगती है। यही स्वत स्फूर्त कविता मंत्र है।

श्री अरविंद ने यह भी लिखा है कि कविता रचने के लिए पहले मुझे भी आयास करना पड़ता था कभी कभी बहुत आयास करना पड़ता था। किंतु अब वह स्थिति नहीं है। कविता अब स्वयं प्रवाहित होती है। उन्होंने यह भी लिखा है कि इधर दस-बीस वर्षों मे मैने खास कुछ पढा भी नहीं है बस उतना ही पढता हू जितने से संसार के साथ संपर्क रखा जा सकता है। लेकिन योग की उच्च स्थिति पर आरूढ़ रहने के कारण कविता व जब चाहते थे तभी लिख लेते थे। नीरादबरण राय अंतिम बारह वर्षों के काल में श्री अरविंद के स्टेनो रहे थे। उन्होने मुझे बताया है कि श्री अरविंद एक ही बैठक म पत्र भी लिखाते थे निबंध भी लिखाते थे और कविताएं भी लिखवा देते थे।

बहुत दिनों से यह विवाद चलता रहा है कि कविता आनंद के लिए है या ज्ञान के लिए। कविता ज्ञान प्रदान करती है यह बात श्री अरविंद ने शायद कहीं कही नहीं है। किंतु ऐसी कविताए उन्होने लिखी हैं जिन्हे हम ज्ञान की कविता कह सकते हैं। किंतु कविता का चरम ध्येय मनोरंजन वाला आनंद है इस मत का भी वे खंडन करते हैं। वे कहते हैं कि वह धरातल सामान्य मनुष्य का धरातल है जिस पर कविता सौंदर्य-बोध अथवा कल्पना का आनंद मानी जाती है श्रवणों का सुख या उच्च कोटि का मनोरंजन समझी जाती है। किंतु साधना के धरातल पर कविता न तो रस है न भोग है न देवोपम मनोरंजन का कार्य है। वह दिव्य आनंद देकर ही समाप्त नहीं हो जाती वह हमारे भीतर कुछ निर्माण करती है किसी लोक को प्रकाशित करती है।

दृष्टि हृदय और विचार ये कविता के निश्चेष्ट (पैसिव) माध्यम हैं। आध्यात्मिक कविता की रचना आत्मा करती है और आत्मा ही उसका ग्रहण और आस्वादन भी करती है।

श्री अरविंद का योग यह बताता है कि साधक को प्राणिक (वाइटल) स्तर से ऊपर उठ जाना चाहिए। किंतु संसार मे जो भी प्रभावशाली काव्य है वह वाइटल से उत्पन्न हुआ है। शेक्सपियर वाइटल के कवि थे कालिदास वाइटल के कवि थे सावित्री को छोड़कर स्वयं श्री अरविंद की कितनी ही कविताए वाइटल की कविताए हैं।

मेरा अपना मत है कि मनुष्य के भीतर तीन स्तर हैं। सबसे नीचे का स्तर जैव प्रवृत्ति का स्तर है। उसके ऊपर मन है और उससे भी आगे आत्मा है। जैव प्रवृत्ति के स्तर पर मनुष्य और पशु समान हैं। कविता का जन्म इसी जैव प्रवृत्ति के स्तर पर होता है। अजब संयोग की बात है कि कविता के रसों के जो मूल भाव हैं उनमें से अनेक मनुष्य म भी होते हैं और पशु म भी। यही स्तर वाइटल का स्तर है। श्री अरविंद शायद इस मत के हैं कि कविता के जन्म के समय वाइटल अवश्य आलोड़ित होता है किंतु कविता की चरम परिणति यह है कि वह वाइटल से उठ कर मन का अतिक्रमण करे और मन को अतिक्रांत करके वह आत्मा म आलिंगित हो जाय।

कविता का जन्म जैव धरातल पर होता है किंतु उसकी सार्थकता तब है जब वह

आत्मा के धरातल पर पहुच जाये।

धर्म का जन्म आत्मा के धरातल पर होता है किंतु उसकी सार्थकता तब है जब वह नीचे उतरकर हमारे जैव धरातल को प्रभावित करे। धर्म की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति हमारे चरित्र में होनी चाहिए।

रस का आस्वादन हम मन से करते हैं वाइटल यानी प्राणिक शक्ति से करते हैं। किंतु अध्यात्म मन और प्राण से आगे की चीज है। फिर भी श्री अरविंद मानते हैं कि आध्यात्मिक कविताओं के भी मूल मे वाइटल का आलोडन अवश्य रहता है। यह अत्यत सूक्ष्म संकेत है। इसका पूरा रहस्य तभी समझ मे आ सकता है जब कोई यह बता दे कि सावित्री की रचना में प्राणिक आलोडन कहा-कहां पर है।

अपनी पीढ़ी के काव्य-प्रेमियों के बारे में श्री अरविंद का यह विचार था कि उनका काव्य-ज्ञान यदि शेली और बायरन पर नही रुकता है तो टेनीसन और ब्राउनिंग पर आकर अवश्य रुक जाता है। किंतु नयी कविताओं से भी श्री अरविंद का परिचय था। कीट्स को श्री अरविंद महाकवि समझते थे। जब नयी कविताओ के नमूने श्री अरविंद के सामने लाये गये तो उनकी प्रतिक्रिया हुई कि आलोचक सबसे अधिक जोर टेक्नीक पर दे रहे हैं किंतु वे भूल जाते हैं कि टेक्नीक के कमजोर रहने पर भी महान आत्मा महान काव्य का निर्माण कर सकती है। श्री अरविंद ने कबीरदास और मीराबाई के नाम नहीं लिये हैं। किंतु हम यहां इन संतो की कविताओं को उदाहरण के रूप मे पेश कर सकते हैं। कबीर और मीरा दोनो की कविताओं में भाषा के किनारे बहुधा टूटे हुए मिलते हैं, किंतु भाषा के अनगढ़ होने पर भी उनकी कविताओं के भीतर जो आकाश दिखायी देता है जो गहराई नजर आती है वह केवल भारत के लिए ही नहीं समस्त विश्व-साहित्य के लिए अनूठी चीज है।

एक जगह श्री अरविंद ने शेक्सपियर और दाते की तुलना की है और कहा है कि शेक्सपियर प्रबल कवि है किंतु दाते बडा ही उच्च कवि था। दाते ने जिस ऊंचाई का स्पर्श किया था शेक्सपियर को उस ऊंचाई का अनुमान भी नहीं था।

इसी प्रकार श्री अरविंद ने ब्लेक की तुलना शेक्सपियर से ही की है और कहा है कि शेक्सपियर ब्लेक से नीचे पड़ता है क्योंकि ब्लेक रहस्यवादी था और रहस्यवादी चेतना शेक्सपियर में थी ही नही।

श्री अरविंद कविता में यांत्रिकता (कौशल तकनीक कलाबाजी) को अधिक महत्त्व नहीं देते थे। उनकी मान्यता थी कि कविता के मेकेनिकल कार्य का जिम्मा अवचेतन भी ले सकता है किंतु प्रेरणा की आंधी में कविता की रचना आत्मा ही करती है और वह मेकेनिज्म का खयाल न भी रख सकती है।

श्री अरविंद कविता की कसौटी यह मानते थे कि वह वर्ण्य वस्तु की आत्मा का उद्घाटन कर सकी है या नहीं। वस्तु के वर्णन में जो आनंद है उससे बड़ा आनंद वह है जो वस्तु की आत्मा के उद्घाटन से उद्भूत होता है। आत्मा की अनुभूति का चित्रण ही असली काव्य है। हृदय और विचार चाहे जितना भी प्रयास करें उनके भीतर से देखने का काम बराबर आत्मा करती है। इसीलिए अपील जहां हमारी निम्न प्रवृत्तियों से होती है केवल मन

या बुद्धि से होती है वहा हम असली कविता की भूमि से बाहर निकल जाते हैं।

इतना कुछ होने पर भी कविता साधना का स्थान नहीं ले सकती। हा वह साधना में सहायक हो सकती है। इसीलिए कविता प्रसिद्धि के लिए नहीं लिखी जानी चाहिए। वह स्वांत सुखाय भी नहीं लिखी जानी चाहिए। उसकी सार्थकता तब है जब वह भागवत सपर्क के लिए लिखी जाये।

प्रत्येक कलाकार के भीतर एक पब्लिक मैन होता है जो कीर्ति चाहता है वाहवाही चाहता है अपने अहं की तृप्ति चाहता है। किंतु योगी को यह सब-कुछ नही चाहिए। वह भगवान का सेवक होता है और भागवत सेवा ही उसका धर्म है। जो कवि साधना की राह पर है उसे महान लेखक बनने की इच्छा भी छोड़ देनी चाहिए। वह प्रेरणा आने पर ही लिखे और केवल भगवान की सेवा के लिए लिखे उनके साथ सपर्क बढ़ाने के लिए लिखे।

शृगार की कविता और जाज संगीत ये खिलौने हैं। इससे ऊपर उठना संकीर्णता नहीं साधक का विकास है।

साधारणत उपन्यास पढ़ना साधकों के लिए अच्छा नही है। किंतु कोई-कोई उपन्यास अपवाद भी हो सकता है।

योगी आध्यात्मिक द्रष्टा होता है कवि को हम मानसिक द्रष्टा कह सकते हैं। कवि मन के धरातल पर है अतएव योगी से वह हीन है। कवि जब योगी हो जायेगा तब वह भी मन के धरातल से उठकर अध्यात्म के धरातल पर चला जायेगा।

अपनी उच्चतम अवस्था में कवि जिस सौदर्य और आनंद का रस लेता है ऋषि और योगी बराबर उससे कहीं गंभीर रस में डूबे रहते हैं।

गेटे शेक्सपियर से कहीं गभीर कवि हैं कहीं ऊचा कवि है किंतु शेक्सपियर के समान वह शक्तिशाली नहीं है। शेक्सपियर केवल कवि था और कुछ वह था ही नही। किंतु गेटे कई चीजे एक साथ था। कवि तो वह इसलिए बना कि कवि बनना उसे पसद था।

धार्मिक कवि और रहस्यवादी कवि में भेद है। धार्मिक उत्साह मन की चीज है वाइटल की शक्ति है उसका रहस्यवादी चेतना से कोई संबध नही है। जो मन से परे नहीं गया वह अभी रहस्यवादी नहीं हुआ है।

शेक्सपियर शेली और वर्ड्सवर्थ आध्यात्मिक अनुभूति के कवि नही थे। किंतु समाधि के क्षणो मे कभी-कभी आध्यात्मिक सत्य उनके भीतर कौध जाता था। लेकिन इनकी टेक्नीक निर्दोष थी। इसके विपरीत एक दूसरे प्रकार के कवि हैं जो शुद्ध आध्यात्मिक अनुभूति के कवि हैं लेकिन भाषा उनकी असमर्थ है अभिव्यक्ति की टेकनीक उनके पास नही है। ये लोग जो कहते हैं उससे खुद तो बहुत अधिक अर्थ निकाल लेते हैं लेकिन दूसरों को उससे उतना अर्थ नहीं मिलता।

कवि को भावना के आधिक्य की आवश्यकता नही होती उसे तो भावना की आत्मा की आवश्यकता होती है।

सभी कलाओ का जन्म ऐंद्रियता से होता है सेंसुअसनेस से होता है वाइटल से

होता है। इसीलिए कलाएं जब अदृश्य को छूने लगती हैं तब भी उनका मूल मिट्टी मे ही गड़ा होता है।

वर्णन और नाटकीयता कविता के स्वभाव का अंग है। कविता आध्यात्मिक हो जाने पर भी वर्णन और नाटकीयता को नहीं छोड़ेगी।

नयी कविता के प्रसंग में भी श्री अरविंद ने कई बाते कहीं हैं जो ध्यान में रखने के योग्य हैं। सबसे बड़ा सूत्र उन्होने यह कहा है कि प्राचीन आचार्यों के साथ हम जो भी संबंध रखना चाहें वह ठीक है। परंतु उन्हें हमे दुहराना नहीं चाहिए उनसे आगे जाना चाहिए।

सुररियलिज्म की बात चलने पर श्री अरविंद ने कहा था मेरा अनुमान है कि यह स्वप्न चेतना की कविता है किंतु उसकी चौहद्दी क्या है यह मै नहीं जानता। अब लोग कहने लगे हैं कि सुररियलिज्म का आरंभ बादलेयर रेम्बू और मेलार्मे में हुआ था। लेकिन पहले बाल्लेयर के बारे मे यह बात नही कही जाती थी और मेलार्मे तो सर्वसम्मति से प्रभाववादी कवि माने जाते थे। यूरोप के नये कवि और चित्रकार अपनी सतही चेतना से भाग रहे हैं वे चेतना की गहराई मे प्रवेश करना चाहते हैं। होना यह चाहिए कि कवि अपनी चेतना के कूपतल में पहुच जाय वस्तुओ के भीतर जो आत्मा छिपी है उससे एकाकार हो जाय और वह बाहरी बातों का भी वर्णन भीतरी अनुभूति के प्रकाश में करे। लेकिन यह हो नहीं रहा है। कवि मन के एक्स रे से ही भीतर की चीजो को देख रहे हैं। परिणाम यह है कि वे वस्तुओं के सार का वर्णन नही कर पाते मन के ही सहारे उस सार का छाया चित्र उतारते हैं। लेकिन यह जरूर है कि कवि मन के सतही अंश से भाग रहे हैं और उनका ध्यान चेतना की गहराई की ओर है।

लेकिन इस रास्ते मे खतरे भी कम नही हैं। अगर सारा जोर टेकनीक पर ही पड़ता गया कौशल पर पड़ता गया उस पर पडता गया जो नितांत अनिवार्य नही है अथवा यदि कवि विकृतियो को उछालने मे विप्रतीय को संवारने मे रस लेने लगे तो कविता पतन के गर्त में भी गिर सकती है। लेकिन सब मिलाकर मुझे यही दिखायी देता है कि कविता की प्रगति का द्वार वही है जिसे खोलने का प्रयास नये कवि कर रहे हैं। कविता अगर आगे बढ़ना चाहती है तो यह जोखिम उसे उठानी पड़ेगी।

किसी ने श्री अरविंद से कहा कि नयी कविता केवल अपने रचयिता की समझ मे आती है और पढ़ते उसे केवल कवि के मित्र हैं। ये मित्र दावा करते हैं कि कविता उनकी समझ में आ जाती है किंतु हमें संदेह है कि कविता इन मित्रों की भी समझ में आती है या नहीं।

श्री अरविंद ने कहा कि इसका कारण यह है कि नये कवि के भावबिंब और प्रतीक बुद्धि की रेखा का अनुगमन नहीं करते बौद्धिक तर्क की राह से नही आते न वे सबुद्धि (इनटुइशन) के संबंधों को मानकर चलते हैं। वे मन के किसी धुंधलके से किसी अंधेरी गहराई से निकलते हैं। ये प्रतीक और बिंब प्राय परस्पर संबद्ध भी होते हैं किंतु यह संबद्धता सतही बुद्धि के दर्पण में नहीं देखी जा सकती। ये कविताएं समझने की नहीं फील करने की

चीज है। और यह प्रवृत्ति अपनी अति पर सुररियलिज्म में पहुंची है। यह भी है कि इन कविताओं मे जो बिंब होते हैं जो कल्पना होती है जो प्रतीक होते हैं वे इतनी गहराई से आते हैं कि उन्हे भाषा में अभिव्यक्त करना कठिन हो जाता है। स्वप्न चेतना का लोक अत्यंत विशाल है। उसमें अगणित देश हैं अगणित प्रदेश हैं।

नयी कविता म श्री अरविंद को दो ही दोष दिखायी देते थे। एक तो प्रेरणापूर्ण वाक्यांशो और अटल शब्दों का अभाव और दूसरा लय का अभाव। श्री अरविद मानते थे कि कविता इन्हीं दो गुणों के कारण चिरायु होती है।

नयी कविता की एक विशेष प्रवृत्ति श्री अरविद यह मानते थे कि उसमें भावना के तूफान को दबाकर रखा जाता है अधिक रंग बिखेरने को बुरा समझा जाता है वाक्पटुता (रेटोरिक) मे परहेज किया जाता है और भावुकता का बहिष्कार किया जाता है।

शब्दों की कारीगरी सीख लेने से अथवा अभ्यास करने से कोई भी व्यक्ति कवि बन सकता है श्री अरविद इसे बिलकुल नही मानते थे। उनका स्पष्ट मत था कि प्रेरणा का स्पर्श पाये बिना सत्कविता की रचना बिलकुल असभव बात है।

श्री अरविद इस बात से खुश नहीं थे कि भावोद्रेग और विचार को कविता मे अब महापाप समझा जाने लगा है। कविता के रूप मे चाहे जितने भी परिवर्तन किये जायें किंतु अच्छी कविता तब भी अच्छी रहेगी जब वह नयी शैली के अदर नही आती हो। कविता की शैली चाहे जो भी हो किंतु प्रेरणा के उत्स पर पहुंचे बिना कोई अच्छी कविता लिखी नहीं जा सकती। श्री अरविद ने कहा है केवल ब्रेन-माइंड से मत लिखो। भावना और विजन की आत्मा के भीतर पहुंचकर लिखना ही कविता लिखने का सही ढंग है।

कविता केवल जैव शक्ति (वाइटल) के कारण शक्तिशालिनी होती है। अगर वाइटल की शक्ति उसके पीछे नही रहे तो न तो वह बलशालिनी हो सकती है न महान हो सकती है। आध्यात्मिक कविता में भी अभिव्यजना की शक्ति वाइटल से ही आती है।

शुद्ध कविता के बारे में श्री अरविद का विचार था कि उसका अस्तित्व ससार मे शायद ही कही खोजा जा सके। और जहा भी वह मिलेगी उसके भीतर बौद्धिक अर्थ का एक होमियोपैथिक डोज़ जरूर मौजूद मिलेगा।

किसी कवि के पाठक कम हैं यह उसके दीर्घायु होने का प्रमाण नही है। इसी प्रकार जिस कवि के पाठक बहुत हैं वह भी दीर्घायु होने का दावा नहीं कर सकता। जो आज प्रसिद्ध है वह कल जनता की दृष्टि मे गिर सकता है। हा वह जनता की दृष्टि से गिरकर भी उसकी आंखो से ओझल नही होगा। लेकिन जो आज अप्रसिद्ध है वह कल जाकर प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कवि अपने युग में भी प्रसिद्ध तो होता है लेकिन उसकी कविताए लोग चाव से नही पढ़ते हैं। फ्रांसीसी कवि मेलार्मे के साथ यही बात हुई। उसका नाम तो था लेकिन उसके समय मे उसकी कविताएं लोग नहीं पढ़ते थे। लेकिन उसकी कविताए नहीं पढ़ने पर भी उसका युग मेलार्मे के नाम मात्र से शाति भग का अनुभव करता था। मेलार्मे ने शांति भग की जो मुद्रा अपने समय में उत्पन्न कर दी उसी मुद्रा से

संसार मे नयी कविता का जन्म हुआ। अब मेलार्मे और रेम्बू के नामो के उदाहरण अधिक दिये जाते हैं। किंतु उनकी कविताओ को चाव से पढने वाले पाठकों का अब भी अभाव है।

मेरी अपनी टिप्पणी यह है कि शेक्सपियर के पाठक हमेशा ज्यादा रहे हैं मलार्मे के पाठक हमेशा कम रहेगे। अतएव एक अर्थ म दीर्घायु दोनों हैं। लेकिन शेक्सपियर की तुलना म मेलार्मे है क्या चीज?

हा यह बात है कि डान और ब्लेक को पहले कोई नहीं पूछता था लेकिन आज उनकी गिनती महाकवियो में होने लगी है। हम लागो का विचार है कि जो भारतीय कवि अपनी कविताए अपनी भाषाओ म न लिखकर अंग्रेजी में लिखते हैं उनका सारा प्रयास व्यर्थ है। भारत के लोग इन कविताओ का आनंद नही ले सकते और अंग्रेज उन्हे शायद कविताएं ही नही मानते हैं। अंग्रेजी के प्रामाणिक आलोचना-ग्रथो मे इन कवियों का उल्लेख भी नही किया जाता है और इंग्लैड से आज तक भी कोई ऐसा प्रामाणिक काव्य सग्रह नहीं निकला जिसमे आरू तोरू हरींद्र सरोजिनी या श्री अरविंद की किसी कविता को स्थान मिला हो।

किंतु श्री अरविंद इतने निराशावादी नहीं थे यद्यपि वे भी यह मानते थे कि अंग्रेजी म सफलता उसी को मिलेगी जिसने उस भाषा को मातृभाषा के समान सीखा हो। रवींद्रनाथ की गीताजलि को वे अन इगलिश मानते थे किंतु उनका विचार था कि अन इगलिश होने पर भी गीताजलि बाधाओं को पार कर गयी है। तोरूदत्त के बारे मे उनका विचार यह था कि पद्य वे बढ़िया रचती थी और उनके भीतर प्रतिभा की चिनगारी भी थी। रोमेशदत्त को वे द्वितीय या तृतीय श्रेणी का कवि समझते थे और कहते थे कि रोमेश अगर अंग्रेज हुए होते तो उन्हें उतनी सफलता भी नही मिलती जितनी भारतीय होने के कारण मिली है। लेकिन सरोजिनी नायडू के बारे म उनके बहुत ऊचे विचार थे। उनका कहना था कि अंग्रेजी भाषा मे जिन भारतीय कवियो ने कविताए लिखी हैं उनमें से किसी भी कवि की कविता उतनी जीवंत शक्तिशालिनी और मौलिक नहीं उतरी जितनी सरोजिनी नायडू की उतरी है। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि सरोजिनी अमरो की पक्ति में बैठने योग्य है।

सस्कृत की तो श्री अरविंद ने सर्वत्र प्रशंसा लिखी है किंतु अन्य भारतीय भाषाओं की क्षमता को वे सीमित समझते थे। बंगला के बारे मे तो उन्होने स्पष्ट लिखा है कि बंगला भाषा अभी प्रौढ नहीं हुई है वह अपनी जवानी से गुजर रही है वह विकास की प्रक्रिया के बीच है उसने कितने ही गुण कितने ही मूल्य और कितनी ही शक्तियां अभी अर्जित नही की हैं।

आश्रमवासी कवि अधिकतर योग की कविताएं लिखते थे और यह देखकर निराश हो जाते थे कि अंग्रेज आलोचक उन कविताओं पर कोई ध्यान नही देते हैं। शायद उन्हीं के आश्वासन के लिए श्री अरविंद ने कहा था कि पश्चिम के लोग भारत के योग और दर्शन की ओर तो उन्मुख हो रहे हैं किंतु योग की कविताओं की ओर उनका ध्यान नहीं गया है। अंतर्राष्ट्रीय मानस के अधिक विस्तृत अधिक उदार होने के बाद इन कविताओं की ओर भी

उनका ध्यान जायगा।

यूरोप के प्रसंग में उन्होंने एक शिष्य को यह भी लिखा था कि भाषा का ह्रास तब होता है जब उस भाषा को बोलने वाली जाति का ह्रास होता है जब जीवन और आत्मा निकल जाते हैं तथा शुष्क बुद्धि और थकी इंद्रियां शेष रह जाती हैं।

यूरोप पर इसी ह्रास की छाया मंडरा रही है और उसका साहित्य इस रोग से आक्रांत हो गया है। किंतु अंग्रेजी भाषा के धनुष में अभी कई रोदाएं शेष हैं और यह भाषा वृद्ध और घिसे हुए इंग्लैंड तक ही सीमित भी नहीं है।

इन उक्तियों से हम क्या समझें? शायद यह कि सावित्री की रचना श्री अरविंद ने अंग्रेजी में इसलिए की कि अंग्रेजी भाषा श्री अरविंद के लिए स्वाभाविक बन गयी थी वह उनकी मातृभाषा के समान थी और उसमे उनकी अनुभूति और कल्पना को सभालने की पूरी क्षमता मौजूद थी? या शायद यह बात भी कि एक दिन अंग्रेज सावित्री काव्य के कारण अपनी भाषा पर उससे भी अधिक अभिमान करेंगे जितना अभिमान वे अभी शेक्सपियर के कारण करते हैं। मगर वह समय कभी आयेगा क्या?

श्री अरविंद की सांध्यवार्ताओं पर जो कई पुस्तकें निकली हैं उनमें दो-एक जगह इस बात की भी चर्चा है कि महाकाव्य के विषय में श्री अरविंद के क्या विचार थे। पिछले सौ वर्षों से ससार में कविता का आत्मनिष्ठता की ओर झुकाव बढता जा रहा है। इसे दृष्टिगत रखते हुए एक शिष्य ने कहा लगता है भविष्य मे महाकाव्य भी अधिक-से-अधिक आत्मनिष्ठ (सबजेक्टिव) होते जायेंगे।

श्री अरविद ने कहा हां दिखायी यही देता है। हमेशा से कवियों का विचार यही रहा है कि महाकाव्य मे कोई कथा भी होनी चाहिए। लेकिन अब भासित होता है कथाओं का कोष समाप्त हो गया। इसके अतिरिक्त नये युग की माग भी आत्मनिष्ठता की ही है और महाकाव्य को भी इस माग का जवाब देना होगा।

इस पर एक शिष्य ने कहा यह दु ख की बात है कि टैगोर ने कोई महाकाव्य नही लिखा।

श्री अरविंद बोले टैगोर ! उनके पास महाकाव्य रचनेवाला मानस नही है। किंतु कुछ वर्णनात्मक कविताएं उन्होने बहुत अच्छी लिखी हैं।

एक दिन श्री पुराणी जी ने कहा यह दु ख की बात है कि भारत की किसी भी नयी भाषा मं कोई ऐसी कृति नहीं है जिसे शुद्ध और सफल महाकाव्य कहा जा सके।

श्री अरविंद ने कहा तुम ऐसा क्यों कहते हो? मधुसूदन (माइकेल मधुसूदनदत्त) ने सफल महाकाव्य लिखा है। उस काव्य का प्रवाह बहुत बढ़िया है। उसकी शैली भी सुंदर है और उसमें लोच भी है किंतु भीतर का द्रव्य उसका कमजोर है। बंगालियो का दिमाग महाकाव्य लिखने वाला दिमाग नही है इसलिए आश्चर्य होता है कि मधुसूदन ने बंगला में महाकाव्य कैसे लिखा। बगला में जो रामायण और महाभारत हैं वे भी अच्छे नहीं हैं। मेरा खयाल है मधुसूदन ने होमर और वर्जिल को खूब पढ़ा था। प्रेरणा मधुसूदन को उन्हीं कवियों से मिली होगी।

इस संबंध में श्री अरविंद ने दो-एक बातें और बतायीं। उन्होंने कहा कि महाकाव्य लिखनेवाला मस्तिष्क बहुत ही ऊंचा, विस्तृत और शक्तिशाली होता है। लेकिन बंगाल का ...ा नाजुक और नर्म है। यही कारण हुआ कि फ्रेंच में भी कोई महाकाव्य नहीं लिखा जा ...ा। फ्रेंच भाषा बहुत ही व्यवस्थित, कोमल और प्रांजल है।

नलिनीकांत गुप्त ने पूछा : इकबाल की कविताएं आपने देखी हैं? कई लोग उन्हें ...ोर से बड़ा कवि मानते हैं।

श्री अरविंद ने कहा : उनकी उर्दू या फारसी की कविताएं तो मैंने नहीं देखी हैं ...किन उनका कुछ थोड़ा अनुवाद मैंने देखा है। मेरा विचार है कि टैगोर की कविताओं के ...तर जो गरिमा और मौलिकता है, वह इकबाल की कविताओं में नहीं है।

महाकाव्य के बारे में श्री अरविंद ने एक सांध्य-वार्ता में यह भी कहा था कि महाकाव्य लिखनेवाला कवि शताब्दियों में कभी एक बार आता है। किंतु उनकी संख्या कितनी थोड़ी रही है? और विषय की बात सोचा तो नेपोलियन का जीवन क्या महाकाव्य का विषय नहीं था? फिर भी महाकाव्य उस पर नहीं लिखा गया। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा अतुलनीय है। उसने कितने महाकवि उत्पन्न किये? असल में संस्कृत भाषा ही महाकाव्य ...। वाल्मीकि और व्यास का तो कहना ही क्या है, कालिदास, भारवि आदि कवियों ने भी महाकाव्य की ऊंचाई प्राप्त कर ली है।' अंग्रेजी में लिखनेवाले भारतीय कवियों की बात चलने पर श्री अरविंद ने एक दिन कहा कि ये लोग कभी-कभी लिखते तो सफलता के साथ हैं किंतु उनकी रचनाओं को देखकर यह भासित नहीं होता कि उनकी कविताओं के भीतर ...ा जीवित मनुष्य बोल रहा है। लगता है, अंग्रेजी साहित्य को पढ़कर वे अंग्रेजी की कविताएं बुन डालते हैं। सरोजिनी नायडू इनमें सबसे अच्छी हैं। उनकी अभिव्यक्तियां भी स्वच्छ हैं किंतु उनका क्षितिज बड़ा नहीं है।

नयी कविता की बात चलाने पर उन्होंने कहा कि जिस पाठक का सूत्र विक्टोरिया-युग में ही छूट गया, वह इन कविताओं को समझ नहीं सकता। सुना है, इंग्लैंड में इन दिनों कविताएं नहीं पढ़ी जाती हैं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। मेरा खयाल है, इसकी जवाबदेही नये कवियों पर थोपी जानी चाहिए।

पुराणी जी ने कहा : थामसन ने मुझे इलियट पढ़ने को कहा था। मैंने उसे पढ़ा भी लेकिन कोई चीज मुझे मिली नहीं, एजरा पौंड में भी नहीं। तब मैंने अमल से पूछा कि उसकी राय क्या है।

श्री अरविंद ने पूछा : अमल ने क्या कहा? पुराणी जी ने कहा : अमल कहता है कि नाम तो उनका पौंड है, लेकिन कीमत उनकी मैं पैनी भर भी नहीं मानता।

श्री अरविंद ने कहा : इलियट आधुनिक कविता के प्रवर्तक हैं, गरचे मैंने उन्हें ध्यान से पढ़ा नहीं है। किंतु तुम जानते हो कि आधुनिक कवि की परिभाषा क्या है? आधुनिक कवि वह है, जिसकी कविता वह खुद समझता है या उसके मित्र समझते हैं।

अतिमानव का मानवीय रूप

जनसाधारण में स जो लाग श्री अरविंद की आर उन्मुख हुए है उनका भाव यह है कि श्री अरविंद पहुंच हुए संत थे उनकी प्रार्थना और भक्ति करन म हमारा कल्याण हागा। और यह भाव ऊंच-ऊंच शिक्षितों के भीतर भी मुझ दिखायी पड़ा है। इस दश म जिंदगी स ऊबा हुआ आदमी भाग्य के धक्के और ठाकर खाया हुआ आदमी अक्सर संतां की आर भागता है जिनमें स एक संत श्री विनाबा जी भी हैं। किंतु जो ऊंचे दरजे के पंडित और विद्वान है दार्शनिक और चिंतक हैं वे श्री अरविंद स कुछ भयभीत भी दिखायी देते हैं। क्यों? इसलिए कि श्री अरविंद स्फटिक के समान उज्ज्वल ता हैं किंतु वैसे ही कठोर भी हैं। उन्हे समझने म दिमाग पर बहुत जोर पड़ता है। उनकी गहराई अथाह है। हम नाव लेकर निकलत तो जरूर हैं मगर हमारी लग्गी तल तक नहीं पहुच पाती।

लगभग २४ वर्षों तक श्री अरविंद बिल्कुल एकांत में रहे थे। वे जिस कमरे में रहते थे उस कमरे क साथ एक बरामदा भी है। आरंभ के बारह वर्षों में वे कमरे से निकलकर बरामदे म भी आते थे किंतु बाद के बारह वर्ष उन्होन कमरे म ही गुजार दिये। तब भी कभी कभी ऐसा हाता था कि उनके दो चार शिष्यों को उन्हे घेरकर बैठने का उनके साथ वार्तालाप करने का सुयोग मिल जाता था। जब सन् १९३८ के नवबर महीने म ठीक दर्शन के दिन श्री अरविंद दुर्घटनग्रस्त हा गये और उनके पाव में चोट आ गयी तब से शिष्यों को उनके पास बैठने के मौके ज्यादा मिलने लगे। उन दिनो श्री अरविंद के साथ शिष्यों की जो बातचीत होती थी उसका रिकार्ड श्री अबालाल पुराणी और श्री नीरोदवरण रखने जाते थे। उसी रिकार्ड के आधार पर पुराणी जी ने सान्ध्य वार्ता नाम की पुस्तक तीन जिल्दा म प्रकाशित करवायी और एक पुस्तक नीरोदवरण ने भी निकाली है। अतिमानस की साधना मे निमग्न रहने के कारण इन पुस्तकों म भी श्री अरविंद का जो रूप खुलता है वह अतिमानव का ही रूप है। किंतु उनकी गोष्ठियों में जब-तब उन विषयों की भी चर्चा छिड़ जाती थी जो हम लोगों की बातचीत क विषय हाते हैं और उन पर श्री अरविंद की प्रतिक्रिया भी कई बार अतिमानवीय न हाकर मानवीय हाती थी।

संतों के बारे म जनसाधारण की सामान्य जिज्ञासा यह होती है कि काम यानी सेक्स

पर उनके विचार क्या हैं। यह प्रश्न श्री अरविंद के सामने अनेक बार आया था, पर हर बार उनके उत्तर का सार यही रहा कि मेरे योग में काम-भोग के लिए स्थान नहीं है। किंतु विभिन्न प्रसंगों में उत्तर देते हुए जोर उन्होंने समस्या के विभिन्न पक्षों पर दिया था।

एक बार किसी साधक ने उनसे पूछा था, 'परस्त्री-गमन के बारे में आपका क्या विचार है?' श्री अरविंद ने कहा, 'क्यों, यह तो स्पष्ट है कि यह अपनी पत्नी के साथ गमन करने से भी ज्यादा खराब है।'

किंतु एक साधक ने जब श्री अरविंद को लिखा कि 'नारी का आकर्षण मुझसे रोके नहीं बनता,' श्री अरविंद के मुंह से निकला, 'उसके लिए यह समझाना भूल है कि नारी का आकर्षण कोई अप्राकृतिक चीज है। वह तो बिलकुल स्वाभाविक है। मानसिक विकृति के कारण ही वह इस आकर्षण से घबरा रहा है। इतने पर भी वह चाहता है कि उस पर अवरोहण हो। अगर अवरोहण हुआ, तब तो वह टूट जायेगा।'

एक दिन एक साधक ने पूछा, 'इस योग में नर और नारी के बीच क्या संबंध है?'

श्री अरविंद ने कहा, *'यह योग वैराग्य का योग नहीं है, इसमें जीवन या संसार का* त्याग बाहर से करने का कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि निम्न शक्तियों को निम्न धरातल पर ही खेलने की छूट दे दी जाय। यह योग नीचे के धरातल से ऊपर दिव्य भाव तक उठने का योग है। काम और क्रोध की जो प्राणिक क्रीड़ा है, वह असल में मनुष्य के भीतर छिपे पशु का खेल है। भीतर जो पशु मानव छिपा है, उसे जीते बिना तुम दिव्य प्रकृति तक जा कैसे सकते हो?

इस प्रसंग में श्री अरविंद ने और भी कितनी ही सूक्ष्म बातें कही और तब वे बोले, 'इस योग में नर और नारी के बीच जो आदर्श संबंध है, उसे तुम अभी नहीं समझ सकोगे। तुम्हें उसे समझने को उसके योग्य बनना होगा। जिसे सामान्यतः लोग प्रेम कहते हैं, वह बिलकुल सतही भावना है और वह प्राणिक उद्वेग से संबद्ध है। प्रेम का असली रस शांत रस है, वह उद्वेगविहीन होता है।'

एक साधक को श्री अरविंद ने यह भी उपदेश दिया था कि 'अपनी पत्नी के साथ तुम्हें उसी भाव से रहना चाहिए, जिस भाव से तुम उस मित्र के साथ रहते हो, जिसका जीवनोद्देश्य वही है, जो तुम्हारा जीवनोद्देश्य है। मैत्री के सिवा और कोई संबंध पत्नी के साथ भी उचित नहीं है। और कहीं तुमसे रहा नहीं जाय, तो तुम्हें अलग रहना चाहिए और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए।'

एक साधिका ने श्री अरविंद को लिखा कि 'मेरा पति काम-भोग छोड़ने को तैयार नहीं है। वह शास्त्रों का उद्धरण देकर कहता है कि पति-पत्नी के बीच यह कर्म अधर्म नहीं माना जा सकता। अगर कामोपभोग वर्जित मान लिया जाय, तो फिर पति-पत्नी के बीच संबंध ही क्या रह जाता है?'

श्री अरविंद ने कहा, 'उसे लिख दो कि नर और नारी के बीच जो सच्चा संबंध है, उसे

वे दोनों अभी नहीं समझ सकेंगे। इस रहस्य को समझने के लिए उन्हें साधना के मार्ग पर अभी बहुत आगे बढ़ना होगा। केवल बुद्धि से इस रहस्य को समझने की कोशिश बेकार है।'

एक साधिका ने लिखा कि 'जब से मैने योग का आरंभ किया है मेरा पति मुझसे रुष्ट रहने लगा है। जब मै इनकार करती हूं वह इसे अपना अपमान समझता है।'

श्री अरविंद ने कहा 'इस साधिका को चाहिए कि अपने पति के साथ के संबंध को वह न स्वीकार करे न अस्वीकार करे। वह अपने योग के सकल्प पर दृढ रहे बाकी जो घटनाए घटती हैं, उन्हे घटित होने दे। नर-नारी के बीच जो वास्तविक संबंध है वह आप-से-आप प्रकट हो जायेगा।'

एक दिन गोष्ठी में पोशाक की बात निकल पड़ी। किसी शिष्य ने कहा 'निष्ठा कहती है कि साड़ी बड़ी ही खूबसूरत पोशाक है। और भारतीय नारियो की रंग-चेतना कितनी तीव्र है!'

श्री अरविंद ने कहा 'वह ठीक कहती है। मुझे आशा है कि हमारी देवियां पश्चिम के प्रभाव में आकर साड़ी का त्याग नहीं करेंगी।'

किसी ने टोका 'साड़ी बड़ी खूबसूरत पोशाक है यह तो ठीक है मगर काम करते समय वह असुविधाजनक हो जाती है।'

श्री अरविंद बोले 'क्यो? रोमवाला ने तो टोगा पहनकर विश्व पर विजय प्राप्त की थी। और हमारी भारतीय देवियां भी तो साड़ी पहनकर कम काम नहीं करती हैं। आदमी जब उपयोगिता के चक्कर में पड़ता है तभी सारी सुंदरता नष्ट हो जाती है। उपयोगिता को सर्वप्रमुख मानना आधुनिक प्रवृत्ति है। आधुनिकतावादी लोग हर चीज को उपयोगिता की नजर से देखते हैं मानो खूबसूरती कोई चीज ही नही हो?'

एक शिष्य ने कहा 'मगर सौंदर्य और उपयोगिता को मिलाकर भी तो चल सकते हैं?'

श्री अरविंद बोले 'लेकिन मिलाकर चलने पर भी जीत आजकल उपयोगिता की ही होगी।'

नलिनीकांत ने कहा सो चाहे जो हो मगर यूरोपीय मर्दों की पोशाक चुस्त होती है उससे काम करने में सहूलियत और फुर्ती मिलती है। लेकिन हिंदुस्तानी धोती केवल आलस्य और आरामतलबी को बढ़ावा देती है।'

श्री अरविंद ने कहा 'लेकिन यह उपयोगिता क्या यूरोपीय पोशाक को दुनिया में सबसे बदसूरत पोशाक होने से बचा सकी है? मैंने बहुत-से लोगो को देखा है जो धोती पहनते हैं लेकिन बड़े ही कर्मठ और फुर्तीवाले हैं। यूरोप के लोग अब तो फकत जांघिया और अधबाही कमीज पहनने लगे हैं। मेरा खयाल है यह सबसे उपयोगी पोशाक है।'

पुराणी जी ने कहा 'अब तो हिंदुस्तानी औरतें भी यूरोपीय लिबास पहनने लगी हैं।'

श्री अरविंद ने कहा भारत की देवियां यूरोप की पोशाक पहनें यह तो

भयानक बात है।'

एक दिन किसी ने कहा 'इस देश में साधुओं से विभूति मांगने का रिवाज है। लोग हमारे यहां भी विभूति (भस्म) के लिए आते हैं।'

श्री अरविंद बोले 'मगर मैंने तो सिगरेट पीना छोड़ दिया। सिगरेट पीता रहता तो थोड़ी-सी राख दे सकता था।'

एक दिन बात होमियोपैथी पर निकल पड़ी। श्री अरविंद ने कहा 'होमियोपैथी योग के अधिक समीप है। एलोपैथी में यांत्रिकता अधिक है। वह मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व को नहीं देखती स्थूल रूप स राग का निदान करती है। किंतु होमियोपैथी मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व पर विचार करती है। इसीलिए उसका प्रभाव सूक्ष्म और तीव्रगामी होता है।'

एक बार पुराणी जी ने कहा धन्वंतरि के विषय में यह कहा जाता है कि वे जिस पौधे के पास खड़े होते थे वह पौधा उन्हें बता देता था कि वह किस रोग की औषधि है।'

श्री अरविंद बोले 'इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है क्योंकि आखिर वह देवताओं के वैद्य थे। आयुर्वेद औषधि-विज्ञान की सबसे पुरानी पद्धति है। यह विज्ञान भारत से पहले यूनान गया था और वहां से उसे अरबवालों ने लिया। ज्योतिष भी भारत से ही अरब गया था।'

नलिनीकांत ने कहा कलकत्ते मे अब आयुर्वेद के स्कूल खुल रहे हैं। यह अच्छा होगा क्योंकि इन स्कूलों में शरीर-शास्त्र और शल्य-चिकित्सा के क्षेत्र मे पूरब और पश्चिम के बीच समन्वय हो सकेगा।

यह सुनकर श्री अरविंद बहुत प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने कहा 'यह क्यों? शरीर-रचना और शल्य चिकित्सा की बातें तो भारत को मालूम थीं। शल्य-चिकित्सा के भारत में बहुत-से औजार थे। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद-जैसी प्राचीन विद्या के लिए आधुनिक ढंग के कॉलिज और स्कूल अनुकूल नहीं दीखते। स्कूलों और कॉलेजों मे जो कुछ सिखाया जाता है वह मानसिक होता है बौद्धिक होता है। लेकिन आयुर्वेद की प्राचीन पद्धति अंतर्बोधात्मक थी इनट्यूटिव थी। इसीलिए उसके स्कूल नहीं थे वह गुरु से शिष्य को प्राप्त होती थी। क्या योग का कोई स्कूल हो सकता है? वही बात तुम आयुर्वेद के विषय में भी समझो। योग के लिए भी स्कूल खोलना इसे मै अमरीकी पद्धति समझता हूं।'

अमरीका के बारे मे श्री अरविंद ने किसी दिन यह भी कहा था कि 'गहरी चीजों की ओर अमरीकी लोग आसानी से नहीं जाते। मेरे बारे में अमरीका में एक लेख छपा था जो बड़ा ही छिछला था। लेकिन निष्ठा (मिस विलसन) कहती है कि मूल रूप में तो वह लेख गंभीर था किंतु गंभीर लेख अमरीकी पाठक नहीं पढ़ेंगे यह सोचकर लेखक ने उसे पीछे छिछला बना दिया। अमरीकी जनता नवीनता चाहती है सनसनीखेज चीजें चाहती है।'

श्री अरविंद ने उस दिन यह कहानी भी कही कि 'अमरीका से एक पत्र आया है जिसमें पत्र लिखनेवाले ने लिखा है आप योग हैं (योगी नहीं)। मैं भी योग हूं। मैं गहरी

समाधि में जा सकता हूं और घुड़दौड़ तथा स्पोर्ट के बारे में भविष्यवाणियां कर सकता हू। आप अमरीका आइए और मेरे साथ बराबर के भागीदार बन जाइए। अगर रुपये लेना आपको मंजूर नही हो तो उन्हें आप गरीबों में बांट दीजियेगा।

एक दिन यूनान की चर्चा चल निकली और किसी ने कहा कि पिछले २००० वर्षों मे यूरोपीय चिंतन केवल प्लेटो के इर्द-गिर्द घूमता रहा है।

श्री अरविंद ने कहा तुम ठीक कहते हो। रोमन लोग लड़ सकते थे कानून बना सकते थे राज्यो को समेटकर एक साथ रख सकते थे किंतु सोचने का काम उन्होने यूनानियो पर छोड़ दिया था। रोमन चिंतक सिसरो सेनेका होरेस आदि ने जो दर्शन तैयार किया वह सब-का सब यूनान से लिया गया था।

किसी शिष्य ने टिप्पणी की और यूनान ने कलाकार कितने अधिक उत्पन्न किये और वे कितनी उच्च कोटि के थे!

श्री अरविंद ने कहा यूनानियो मे सौंदर्य बोध की भावना प्रबल थी। आधुनिक यूरोप ने अगर यूनान की किसी एक चीज को अपने भीतर जज्ब नही किया तो वह यही सौंदर्य बोध की भावना है। तुम यह नही कह सकते कि यूरोपीय सस्कृति में सौंदर्य भी है। यही बात भारत के विषय में भी कही जा सकती है। भारत मे भी सौंदर्य-बोध की भावना उच्च कोटि की थी किंतु हमने उसे खो दिया और अब यूरोपीय सस्कृति के प्रभाव मे आकर हम उस अधिकाधिक खोते जा रहे हैं। यूरोप का मानसिक ह्रास इतने से ही जाना जा सकता है कि वहा अब ऐसे लोग उत्पन्न हो गये हैं जो हिटलर को स्वीकार करते हैं। आज से ५० वर्ष पूर्व कोई यह सोच भी नहीं सकता था कि हिटलर-जैसा आदमी उत्पन्न होगा और लोग उसे कबूल भी करेंगे।

एक दिन डिक्टेटर पर बात चल निकली। किसी ने कहा अलडूस हक्स्ले का कहना है कि नेपोलियन पर जितनी किताबें लिखी गयी हैं उतनी और किसी आदमी पर नही लिखी गयीं। आदमी जब तक सीजर और नेपोलियन की बड़ाई करता रहेगा तब तक मानव समाज मे सीजर नेपोलियन और हिटलर पैदा होते रहेगे।

श्री अरविंद ने कहा हक्स्ले शायद यह समझते हैं कि सीजर और नेपोलियन दुनिया के पहले डिक्टेटर थे। सच्ची बात यह है कि तानाशाही उतनी ही पुरानी है जितना पुराना यह संसार है। जब जब समाज मे अव्यवस्था फैली है अशांति फैली है तब-तब उसके सुधार और दमन के लिए तानाशाह उत्पन्न हुए हैं। सीजर और नेपोलियन की निंदा करने के मानी ये हैं कि हम पुरुष की शक्ति सामर्थ्य और सफलता की निंदा करते हैं। हिटलर अवश्य निंदनीय है लेकिन कमाल पाशा को हम क्या कहेगे? पिल्सुदस्की को क्या कहेगे? स्टालिन और बालकन के राजाओ को क्या कहेगे? और महात्मा गांधी भी तो एक तरह के डिक्टेटर ही हैं।

फिर यह बात चली कि हक्स्ले ने युद्ध का विरोध किया है।

श्री अरविंद ने कहा युद्ध के विरोध मे भला क्या आपत्ति हो सकती है? सवाल यह है कि युद्ध रोका कैसे जाय? जब दुश्मन लड़ने पर बिलकुल आमादा है तब युद्ध को तुम रोक कैसे

सकते हो? युद्ध के रोकने का उपाय यह है कि तुम दुश्मन से अधिक बलवान बन जाओ या फिर अन्य राष्ट्रों से दोस्ती करके अधिक बलवान बनो या फिर गांधी जी के अनुसार शत्रु का हृदय परिवर्तन करो या सत्याग्रह करो।

तब प्रश्न यह उठा कि हक्स्ले ने कहा है कि राज्य संसार में उन लोगों को चलना चाहिए जो अनासक्त और निःस्वार्थ भाव से प्रजा की सेवा कर सकें।

श्री अरविंद ने कहा निस्संदेह यह बहुत अच्छी बात है। लेकिन अनासक्त लोग तुम्हें मिलेंगे कहां? और मिल भी जाय तो उनके नेतृत्व को आसक्त लोग स्वीकार करेंगे क्या? अनासक्त शासक अगर अपने निर्णयों को आसक्त लोगों से स्वीकृत कराना चाहे तो वे लोग उन निर्णयों को स्वीकार करेंगे? स्वामी विवेकानंद ने मनुष्य के स्वभाव को कुत्ते की पूंछ कहा था। उसे जितनी बार सीधी करो उतनी ही बार वह टेढ़ी हो जायगी। यही कारण था कि संवेदनशील लोग समाज से भागकर एकांत में चले जाते थे। उनका विचार होता था कि चूंकि मानव स्वभाव बदला नहीं जा सकता इसलिए इस पचड़े को ही छोड़ दो। रूसी क्रांति के सामने भी यह मसला आया था। किंतु लेनिन के साथ पंद्रह लाख ऐसे क्रांतिकारी मर्द थे जो समझौता करने को तैयार नहीं थे। इसी से रूस में क्रांतिकारियों को सफलता प्राप्त हुई।

किसी ने कहा कि स्वामी विवेकानंद कहते थे कि लालसाओं और उच्च अभिलाषाओं से छुटकारा मनुष्य को तभी मिल सकता है जब भगवान उस पर कृपा करें।

श्री अरविंद बोले यह बात ठीक है। लालसा और उच्च अभिलाषा दूर-दूर तक मनुष्य का पीछा करती है। जब बड़ौदे में मुझे निर्वाण की अनुभूति हुई थी मुझे लगने लगा था कि लालसा और अभिलाषा मुझमें नहीं है। किंतु कलकत्ता पहुंचने पर मैंने अंतर्ध्वनि सुनी जिससे मालूम हुआ कि मैं भ्रम में था। असल में यह वैसा ही है जैसे कांग्रेस के दो दल कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए लड़ते हैं और प्रत्येक दल यही समझता है कि वह सेवा के लिए लड़ रहा है सिद्धांत के लिए लड़ रहा है।

एक दिन अनैतिकता की बात चली। किसी शिष्य ने कहा बहुत से ऐसे लोग हैं जो चरित्र में ढीले हैं किंतु सफलता उन्हें खूब मिलती है और राजनीति में वे महान समझे जाते हैं।

श्री अरविंद ने कहा सफलता और महत्ता का चरित्र के साथ क्या संबंध है? संसार के अधिकांश महापुरुष दुश्चरित्र हुए हैं। चरित्र की शिथिलता का कारण यह है कि उस व्यक्ति का प्राणिक तत्त्व (वाइटल) बहुत बलवान है। प्राणिक तत्त्व की यही प्रबलता उसकी सफलता का कारण होती है। प्राणिक आवेग को बेलगाम छोड़ देना ही दुश्चरित्रता है। देखना यह है कि यह आवेग बल के स्तर पर उठता है या दुर्बलता के स्तर से। संयम और आत्म-दमन केवल योगी और साधु ही करते हैं यह बात नहीं है। अपने प्राणिक आवेगों का दमन असुर भी करते हैं जिससे आगे चलकर वे भी व्यापक आनंद का भोग कर सकें। जो केवल दुर्बलता के कारण या समाज के भय से अपने आवेगों को भोग की ओर जाने से रोकते हैं उन्हें मैं पवित्र नहीं कहूंगा। साधारण नैतिकता यही है कि हम समाज के नियमों का पालन करें।

जब गांधी जी ने अपनी गर्भवती स्त्री के साथ समागम किया था तब उसमें कोई अनैतिक बात नहीं थी लेकिन गांधी जी ने उसे पाप मान लिया। ज्यादा संत ऐसे ही हुए हैं जो अपने जीवन के आरंभ में पापी रहे थे जैसे बिल्वमंगल पापी थे।

शिष्य ने पूछा क्या कुछ संत इसके अपवाद नहीं हैं?

श्री अरविंद ने कहा नहीं। कारण यह है कि वे अपने पाप को स्वीकार (कनफेस) नहीं करते। सी आर दास चरित्रवान नहीं थे लेकिन कौन कह सकता है कि वे महान नहीं थ?

एक बार किसी शिष्य ने कहा शंकराचार्य तो अवश्य ही ब्रह्म में लीन हुए होंगे।

श्री अरविंद बोले अच्छा हो कि यह सवाल तुम स्वयं ब्रह्म से ही पूछ लो। मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता। यह बड़ा ही पेचीदा मसला है। मेरा तो अनुमान यह है कि ब्रह्म ने शंकर से कहा होगा कि तुम इतने तार्किक हो कि तुम मुझमें लीन नहीं हो सकते।

सेक्स की चर्चा एक दिन और निकल पड़ी। एक साधक ने कहा आपके योग में काम का वर्जन है लेकिन तंत्र-मार्ग में खास कर वाम मार्ग में कामशक्ति का उपयोग आध्यात्मिक उन्नति के लिए किया जाता है।

श्री अरविंद ने पूछा कैसे?

शिष्य ने कहा वही तो हम जानना चाहते हैं।

श्री अरविंद ने कहा अगर तुमसे न रहा जाय तो मछली तुम खा सकते हो पीना चाहो तो शराब भी पी सकते हो। लेकिन काम-कृत्य का उपयोग तुम आध्यात्मिक जीवन के लिए कैसे कर सकते हो? अपने-आपमें काम-कृत्य उतना बुरा नहीं है जितना नीतिकार उसे बताते हैं। यह शरीर का स्वाभाविक आंदोलन है और उसका कोई लक्ष्य है। अपने-आपमें वह न तो अच्छा है न बुरा है। लेकिन योग की दृष्टि से काम शक्ति संसार में सबसे बड़ी शक्ति है। अगर उचित ढंग से उसका उपयोग किया जाय तो वह तुम्हारे अस्तित्व को संवारती है उसे जवान बनाती है। लेकिन अगर उसका उपयोग मामूली ढंग से किया जाय तब वह दो कारणों से बहुत बड़ी बाधा बन जाती है। पहला कारण यह है कि काम-कृत्य से प्राणिक शक्ति का ह्रास होता है काम-कृत्य तुम्हें मृत्यु की ओर ले जाता है यद्यपि उससे नया जीवन भी जन्म लेता है। नये जीवन का उत्पन्न होना यही काम-कृत्य की क्षति-पूर्ति है। काम-कृत्य मृत्यु की ओर यात्रा है यह इस बात से भी सिद्ध होता है कि संभोग के पश्चात आदमी को ग्लानि की अनुभूति होती है किसी किसी को उससे घृणा भी होने लगती है।

शिष्य ने कहा मगर आंकड़े तो इसी बात के अधिक हैं कि अविवाहितों की अपेक्षा विवाहित लोग ही ज्यादा जीते हैं।

श्री अरविंद ने कहा यह ठीक ठीक सही नहीं है। कोई दीर्घजीवी यह कह सकता है कि वह सिगरेट नहीं पीता है इसीलिए वह सौ साल तक जी सका है। मगर कोई यह भी कह सकता है कि सिगरेट पीने से कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि सिगरेट पीता हुआ मैं शतायु

हुआ हूं। काम-कृत्य के साथ जो उत्तेजना चढ़ती है वह मनुष्य की साइकिक संभावनाओं को नष्ट कर देती है और चेतना के उच्च बिंदु से उतरकर मनुष्य नीचे आ जाता है।

शिष्य ने पूछा काम-कृत्य मे जो नीचे ले जाने की प्रवृत्ति है उसमे विवाह और कानून की सहमति से कोई फर्क पड़ता है या नहीं?

श्री अरविंद ने कहा बिलकुल नहीं। जो भी नैतिक नियम हैं समाज की व्यवस्था के लिए हैं जन्म लेने वाले बच्चों के कल्याण के लिए हैं। जहां तक योग का संबंध है अपनी पत्नी के साथ समोग उतना ही बुरा है जितना पराई स्त्री के साथ। आध्यात्मिक ध्येय के लिए काम का उपयोग केवल वे लोग कर सकते हैं जो मानवीय धरातल से ऊपर उठ गये हैं जिनके भीतर आध्यात्मिक और प्राणिक दोनों ही शक्तियां विद्यमान हैं।

इस पर शिष्य ने घबराकर कहा यदि काम-कृत्य का नतीजा इतना खराब है तब तो साधना में उसम सहयोग लेने की बात सोचनी भी नहीं चाहिए। तब तो हमारा सुरक्षित मार्ग पर ही रहना ठीक है।

श्री अरविंद ने कहा इस सवाल का जवाब देना बड़ा ही खतरनाक है। इसका जवाब मैं तुम्हें तब दूंगा जब तुम मानवीय धरातल से ऊपर उठ जाओगे।

शिष्य ने पूछा जब हम मानवीय चेतना से ऊपर उठ जाते हैं तब काम-कृत्य से होने वाले ह्रास का क्या होता है? वह रोका कैसे जाता है?

श्री अरविंद ने कहा उच्च शक्तियां चीजों को अपने ढंग से संभालती हैं और हानिकारक प्रभावों को वे रोक देती हैं। उस समय कामोपभोग का तरीका वही नहीं होता जो मानवीय धरातल पर देखा जाता है। आध्यात्मिक स्तर पर उसका रूप ही परिवर्तित हो जाता है।

एक दिन चर्चा इस बात की चली कि प्रत्येक भारतवासी की औसत आय क्या है। एक शिष्य ने कहा यही कोई तीस रुपये साल। दूसरे शिष्य ने कहा यानी ढाई रुपये प्रति मास।

श्री अरविंद ने कहा तब तो न्यू इंडिया ने अच्छा सुझाव दिया है। उसका प्रस्ताव यह है कि प्रत्येक मंत्री को उतना ही वेतन मिलना चाहिए जितनी भारतवासियों की औसत आय है। जैसे जैसे जनता की औसत आय में वृद्धि होगी वैसे ही वैसे मंत्री का वेतन और भी बढ़ेगा।

सन् १९२४ में पंडित मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी की ओर से कोई पत्र निकाला था और श्री अरविंद से उन्होंने एक लेख की याचना की थी।

श्री अरविंद ने शिष्य-मंडली से पूछा तुमने मोतीलाल का पत्र पढ़ा है?

शिष्यों ने कहा हां पढ़ा है।

श्री अरविंद ने कहा स्पष्ट ही स्वराज पार्टी के लोग महात्मा से बहुत डरे हुए हैं।

एक शिष्य ने कहा मगर उनके भीतर महात्मा जी के लिए प्रेम और आदर भी है।

श्री अरविंद ने कहा सो तो है मगर प्रेम और आदर से अधिक प्रमुख भय और त्रास ही है।

सन् १९३८ ई में डाक्टर भगवानदास जी ने सार्वजनिक मंच से एक सुझाव दिया था कि विधान-सभाओं के सदस्य वे ही बनाये जायें जिनकी उम्र चालीस वर्ष से अधिक हो और जिनका चरित्र ऋषि का चरित्र हो।

यह बात जब श्री अरविंद के ध्यान में लायी गयी उन्होंने कहा इससे आशा बधती हो ऐसी तो कोई बात नहीं है। ऋषियों का चैंबर बड़ी ही अजीब कल्पना है। अगर ऋषियों को एक जगह एकत्र करोगे तो वे आपस में झगड़ने लगेंगे। कहावत ही है नाना मुनि नाना मत। प्राचीन काल में ऋषि राजाओं का मार्गदर्शन इसलिए कर पाते थे कि ऋषि सारे देश में बिखरे हुए थे वे एक स्थान पर एकत्र नहीं थे।

सन् १९३८ में ही किसी ने एक दिन कहा जर्मन लोग यहूदियों से नाराज हैं (हिटलर यहूदी जाति को ही मिटा देना चाहता था) क्योंकि प्रथम विश्व-युद्ध में यहूदियों ने जर्मनी के साथ देश द्रोह किया था।

श्री अरविंद ने कहा बेवकूफी की बात। सच तो यह है कि यहूदियों ने जर्मनी के महान बनने में पूरा योगदान दिया है। जर्मनी का वाणिज्य-बेड़ा और उसकी नौ सेना यहूदियों का निर्माण है। यहूदी बहुत ही कुशल जाति है इसीलिए बाकी लोग उनसे जलते हैं। सारे संसार की प्रगति में यहूदियों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। मैंने यहूदियों के बारे में की गयी एक प्राचीन भविष्यवाणी की बात तुमसे कभी की या नहीं? जब यहूदियों पर भीषण अत्याचार होगा और वे खदेड़कर जेरूसलम पहुंचा दिये जायेंगे तब संसार में फिर से स्वर्णयुग का आरंभ हो जायेगा।

इसी तरह अंग्रेज भी स्काट लोगों से जलते हैं क्योंकि व्यापार के क्षेत्र में स्काटलैंडवालों ने अंग्रेजों को पीट दिया है।

और बंगाल में क्या देखते हो? पश्चिम बंगाल के लोग पूरब के बंगालियों को बांगाल कहते थे। उन्होंने एक कहावत ही गढ़ ली थी—बांगाल मानुस मानुस नोय ओ एक जंतु।

एक मुहल्ले के कुत्ते दूसरे मुहल्ले के कुत्ते को बर्दाश्त नहीं कर सकते। पंच नामक अंग्रेजी पत्र में एक मजाक छपा था। बिल ! यह नया आदमी कौन है? बिल ने कहा— अरे विदेशी मालूम होता है मारो

पटने के महदी इमाम साहब श्री अरविंद के बड़े भक्त हैं। वे साधक भी हैं और अंग्रेजी में कविताएं भी लिखते हैं। अंग्रेजी कवि शेली पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी जो बहुत प्रसिद्ध हुई। श्री अरविंद के सामने जब इस पुस्तक का प्रसंग आया उन्होंने कहा मेरा खयाल है महदी इमाम पर सूफियों का प्रभाव है। उसका यह कहना सही मालूम होता है कि आधुनिक युग के आरंभ के पहले कितने ही कवियों की प्रेरणा अन्य लोक से आती थी क्योंकि अन्य लोक में उनका विश्वास था। फिर भी महदी इमाम का यह कहना ठीक नहीं है कि शेली आदि कवियों को कास्मिक एकता की अनुभूति प्राप्त थी। खास कर शेली तो

उदात्तीकृत शृंगार का कवि था। वह पहली दृष्टि में प्रत्येक नारी को देवी समझ लेता था और उसके प्रेम में उद्विग्न हो उठता था। लेकिन उसका मोह-भंग भी तुरंत हो जाता था। और उस नारी को राक्षसी समझकर वह उससे भागने लगता था।'

एक बार श्री सुभाषचंद्र बोस ने श्री दिलीप कुमार राय को एक पत्र लिखा था, जो चंदननगर के 'प्रवर्तक' नामक पत्र में छपा। इस पत्र में सुभाष बाबू ने लिखा था कि 'मेरे जानते श्री अरविंद विवेकानंद से अधिक गंभीर हैं। वे बहुत बड़े ध्यानी भी हैं। लेकिन मेरा खयाल है कर्म के क्षेत्र से बहुत दिनों तक दूर रहने के कारण उनकी दृष्टि एकांगी हो गयी है। ऐसा व्यक्ति अपने-आप को अतिमानव की कोटि तक भले उठा ले, लेकिन जनसाधारण के लिए मैं सेवा और कर्म के मार्ग को ही श्रेष्ठ समझता हूं।'

पत्र सुन लेने के बाद श्री अरविंद ने कहा, 'मुझे खुशी है कि चिट्ठी ज्यादा लंबी नहीं है।'

एक बार रूस के बारे में पूछे जाने पर श्री अरविंद ने कहा 'रूस में जो प्रयोग किया गया है उसके न किये जाने पर मानवता की अनुभूति अधूरी रहती। रूस ने एक नया ढांचा (फार्म) तैयार कर लिया है। देखना यह है कि उसके भीतर से रूस वाले क्या कर पाते हैं।'

एक अन्य अवसर पर रूस के बारे में उन्होंने कहा 'अपने अर्थ में साम्यवादी तो मैं भी हूं किंतु रूस में जो कुछ हो रहा है, वह मुझे पसंद नहीं है।'

एक दिन श्री अरविंद शिष्यों को यह समझा रहे थे कि जब दो व्यक्तियों में गाढ़ी दोस्ती होती है, तब उसका कारण यह होता है कि दोनों को एक दूसरे की प्राणिक शक्ति की आवश्यकता है। यही नियम नर और नारी के संबंध का भी कारण होता है। जब नारी को किसी नर की आवश्यकता होती है, तब इसका अर्थ यह होता है कि उसे किसी दूसरे की प्राणिक शक्ति की आवश्यकता है। नर और नारी जब एक दूसरे के पीछे भागते चलते हैं, तब खेल इसी आकर्षण का चलता है, प्राणिक शक्ति के इसी आदान-प्रदान का चलता है। नर और नारी आपस में झगड़ते भी हैं, किंतु झगड़कर भी वे साथ रहना नहीं छोड़ते, क्योंकि एक-दूसरे की प्राणिक शक्ति की यही आवश्यकता उन्हें बांधे हुए है।

एक शिष्य ने पूछा, 'यदि एक ने दूसरे की प्राणिक शक्ति अधिक खींच ली, तो क्या होगा?'

श्री अरविंद ने कहा, 'यदि कोई देता कम, खींचता ज्यादा है, तो इसका परिणाम दूसरे के लिए बुरा होगा। हिंदू ज्योतिष में एक योग राक्षसयोग है। एक पति की अनेक पत्नियां जब मर जाती हैं, तब यही कहा जायगा कि उसने पत्नियों का पालन नहीं, भक्षण किया है।'

एक दिन फासिज्म और कम्युनिज्म पर विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा, 'सरकारी नियंत्रण में मेरा विश्वास नहीं है, क्योंकि मैं थोड़ी आजादी चाहता हूं, सोचने की आजादी रास्ता छोड़ने की आजादी, गलती करने की आजादी और फिर से सही रास्ते पर आने की आजादी। प्रकृति ने जब मनुष्य को बनाया था, तब वह जानती थी कि इसके भीतर

गलती करने की भी संभावनाएं हैं। खतरा उठाने की आजादी नहीं रही गलती करने की आजादी नहीं रही तो मनुष्य की प्रगति रुक जायेगी। आजादी नहीं रही तो मनुष्य की चेतना का भी विकास नहीं होगा।

हम जिस सभ्यता में जी रहे हैं वह निखालिस वरदान नहीं शाप भी है। जरा देखो कि यूरोप मे क्या हो रहा है। नाजी जर्मनी मे चीजें किस हालत मे हैं? व्यक्ति के लिए सिर उठाने की वहां गुंजाइश ही नही है। जर्मनी में या तो हिटलरी तंत्र टूटेगा या जनता का सर्वनाश हो जायेगा। जो हाल नात्सीवाद का है वही हाल फासिस्टवाद और साम्यवाद का भी है। इन पद्धतियों मे ब्राह्मणों अर्थात् मनीषियो के लिए कोई स्थान नहीं है।

यह आश्चर्य की बात है कि स्वीकृति पाते ही चीजे बर्बाद कैसे होन लगती हैं। डिमोक्रेसी उस समय कही अच्छी चीज थी जब उसका नाम डिमोक्रेसी नही पड़ा था। जब नाम आ जाता है सत्य विदाई ले लेता है। मै पहले ही जानता था कि जब समाजवाद आयेगा व्यक्ति की सारी स्वतंत्रता समाप्त हो जायगी।

एक शिष्य ने पूछा तो फिर रोम्यां-रोलां जैसे लोग रूस के प्रति इतना उत्साह क्यो दिखा रहे हैं?

श्री अरविंद ने कहा संभवत इसलिए कि वे समाजवादी हैं। लेकिन उनका मोह अब टूट रहा है। फ्रांस के बहुत से मजदूर रूस चले गये थे लेकिन निराश होकर उन्हे वहा से लौटना पडा। जब प्रजातंत्र आया था तब भी लोगो को आशा बधी थी कि अब स्वतंत्रता का आनंद छूटकर उठायेंगे। लेकिन यह आशा पूरी नही हुई।

शिष्य ने टोका लेकिन यह तो हुआ है कि पहले वे सम्राट की सेवा करते थे अब वे जनता की सेवा कर रहे हैं।

श्री अरविंद ने कहा यह विचार तुम को कहां से मिला? सम्राट का शासन से क्या सरोकार था? देश पर असली राज पूंजीपतियों और धनियो का चलता था। नाम चाहे जो भी दो लेकिन बाते आज भी वे ही चल रही हैं। नाम चाहे जो भी रखो लेकिन यह सारी-की सारी व्यवस्था धोखा है धोखे का जाल है। राजनीति के यंत्र से मनुष्यता को बदलना बिलकुल असंभव है। यह हो ही नहीं सकता।

जापानियों के बारे मे श्री अरविंद के बड़े ऊंचे विचार थे। एक बार अपने शिष्यों से उन्होने कहा था कि जापानी बडे ही सज्जन और सुशील होते हैं और उनका आचरण बडा ही विनम्र होता है। लेकिन वे तुम्हें अपने व्यक्तिगत जीवन के दायरे मे नहीं आने देंगे। आत्म नियंत्रण की शक्ति उनकी अद्भुत होती है। वे क्रोध में आकर तुमसे झगड़ा नही करेंगे। लेकिन बात उनकी इज्जत पर आन पड़े तो वे तुम्हारी जान तक ले सकते हैं और अगर वे तुम्हारी जान न ले सके तो अपनी जान वे तुम्हारे दरवाजे पर गंवा देंगे। अगर किसी अंग्रेज के दरवाजे पर कोई जापानी आत्महत्या कर ले तो फिर उस अंग्रेज का वहां रहना ही असंभव हो जायगा।

जुर्म करने मे भी जापानी एक विचित्र प्रकार के मूल्य का निर्वाह करते हैं। अगर घरवाला कहे कि उसे थोड़े रुपयो की जरूरत है तो लुटेरे कुछ रुपये उसके लिए छोड़ देते

और घर वाले ने कहीं यह कहा कि वह कर्जदार है और कर्ज चुकाये बिना उसकी इज्जत नहीं बचेगी तो लुटेरे सारा माल उसे लौटा देंगे।'

'इस पृष्ठभूमि पर जरा उन चोरों और ठगकों के बारे में सोचो, जो इंग्लैंड और अमरीका में भरे हुए हैं।'

'रूसी-जापानी युद्ध में जब रूसियों की हार हो गयी, तब निकोलो यह सोचकर रोने लगा था कि हाय रूस के जार की इज्जत चली गयी।'

'भूकंप के कारण एक बार जापान में आग लग गयी। जहां आग लगी थी, वहां कोई पचास हजार आदमी जमा थे। वे सब-के-सब जल रहे थे, लेकिन किसी के मुख से चीख या पुकार नहीं निकल रही थी। वे सब-के-सब समवेत स्वर में बौद्ध मंत्र का पाठ कर रहे थे। जापानी वीर जाति है। उसकी आत्मनियंत्रण की शक्ति आश्चर्यजनक है।

'यह दु:ख की बात है कि इतनी अच्छी जाति यूरोप की कुरूप सभ्यता के संपर्क में पड़कर खराब हो रही है। अब जापानी भी बनिये हो गये हैं। पैसे के लिए वे अब कुछ भी कर सकते हैं। एक जापानी महिला बहुत दिनों तक अमरीका में रह गयी थी। वह जब जापान लौटी उसने अपने देश को बहुत बदला हुआ पाया। इस परिवर्तन को वह बर्दाश्त नहीं कर सकी और चुपचाप फिर अमरीका लौट गयी।'

जब जापान ने चीन पर चढ़ाई की थी, रवींद्रनाथ ठाकुर ने जापान के खिलाफ एक जोरदार बयान दिया था। रवींद्रनाथ के वक्तव्य का खंडन करते हुए जापानी कवि योन नोगूची ने एक दूसरा वक्तव्य दिया था। यह वक्तव्य जब श्री अरविंद को दिखाया गया, उन्होंने कहा, 'हर विषय के दो पहलू होते हैं। साम्राज्यवाद के खिलाफ इस प्रकार के नारों में मेरा अधिक विश्वास नहीं है। इस प्रकार का विजय-अभियान पहले राजनीति का स्वाभाविक कर्तव्य समझा जाता था। प्राय: प्रत्येक जाति इस प्रकार का कार्य करती है। और चीन को तुम क्या समझते हो? क्या चीन ने काशगर को इसी तरह नहीं जीता था? काशगर नाम ही बतलाता है कि चीन को वहां जाने का कोई अधिकार नहीं था। अब आदमियों को मारने के तरीके बदल गये हैं। इसके सिवा युद्ध में मुझे और कोई भेद दिखायी नहीं देता। यह ऐंग्लो-सैक्सन जाति का पाखंड है, जो इस तरह की चीख-चिल्लाहट मचाता है। फ्रांस तो कुछ भी नहीं बोलता।'

शिष्य ने कहा, 'फ्रांसीसी लोगों का दिमाग जल्दी खराब नहीं होता है, लेकिन जब वह खराब होता है, पूरा ही खराब हो जाता है।'

श्री अरविंद बोले, 'हां पहले हिंदुस्तानी के बारे में भी लोग सोचते थे कि वह हाथी के समान धानतु और विनम्र होता है। मगर जब यह हाथी बिगड़ जाता है, तो फिर उसकी जिद में आने से बचने में ही खैर है।'

शिष्य ने पूछा, 'क्या यूरोपीय सभ्यता में कोई भी अच्छी बात नहीं है?'

श्री अरविंद ने कहा, 'है क्यों नहीं? सफाई स्वच्छता, स्वास्थ्य, सेवा—ये सभी अच्छी बातें हैं। किंतु यूरोप ने मानवता के नैतिक टोन को नीचे कर दिया। उन्नीसवीं सदी की सभ्यता भी इस सभ्यता से श्रेष्ठ थी। पिछले महायुद्ध के बाद यूरोप संभल नहीं सका। पुराने

समय के लोगों के सामने ऊंचे आदर्श थे और व इन आदर्शों को और भी ऊंचा उठाना चाहते थे। किंतु पिछले महायुद्ध (प्रथम विश्वयुद्ध) के बाद यूरोप के सभी आदर्श नष्ट हो गये। यूरोप के लोग सनकी हो गये है स्वार्थी हो गये हैं। मेरा खयाल है इस सबकी जड म वाणिज्यवाद है।

प्रजातंत्र की चर्चा चलाने पर श्री अरविंद ने कहा तुम समझते हो कि प्रजातंत्र शासन का सबसे अच्छा रूप है? इग्लैंड को छोडकर वह कही भी कामयाब नहीं हुआ है। फ्रास मे तो उसकी हालत और भी खराब है।

एक दूसरे दिन उन्होंने कहा तुम ससदीय उदारतावाद को अपना रहे हो मजदूर आदोलन को अपना रहे हो इसलिए कि ये चीज यूरोप मे हैं। किंतु वहा वे वस्तुए वास्तविकता पर आधारित हैं किंतु भारत मे वे नाम भर हैं। सार्वजनिक शिक्षा के पूर्ण हुए बिना ससदीय पद्धति कामयाब नही हो सकती।

एक दिन किसी ने पूछा भारत ने बाहर से आने वाली सभी जातियो को पचाकर अपने साथ एकाकार कर लिया लेकिन वह मुसलमानो को क्यों नही पचा सका?

श्री अरविंद ने कहा मानसिक धरातल पर भारत मे यह प्रक्रिया भी आरभ हुई थी मगर वह आगे नही बढ सकी। आगे वह तब बढेगी जब मुस्लिम मानस मे सुधार हो मुसलमान सहिष्णु बनें। जब तक मुसलमानो के भीतर सहिष्णुता नही आती मेरा खयाल है भारत उन्हे पचा नही सकेगा। हिंदू हर हालत म सहिष्णु होने को तैयार हैं। वह सबको अपने भीतर पचा सकता है बशर्ते कि लोग उसके केंद्रीय सत्य को मानने को तैयार हो।

राष्ट्रीयता की बात चलने पर उन्होने कहा राजनीतिक अर्थ म राष्ट्र की परिकल्पना भारत में थी ही नही। हां सांस्कृतिक और आध्यात्मिक अर्थ मे राष्ट्र यहां भी था। यही हाल बाकी ससार का था। फ्रास राष्ट्रीय तब बनने लगा जब जान आव् आर्क का आविर्भाव हुआ। उसके पूर्व इग्लैंड को फ्रास के अमीरो म ब्रिटिश पक्ष के समर्थक मिल जाते थे।

बडे कल-कारखानो के विषय मे चर्चा छिडने पर श्री अरविंद ने कहा बडी मशीनो का आना अनिवार्य है। जब तक उत्पादन बडे पैमाने पर नही किये जायगे भारत से गरीबी दूर नहीं होगी। मशीनो के खिलाफ जो आवाज उठायी जा रही है उसका मूल कारण यह है कि भारतवासी गरीबी को दुर्गुण नही मानते। भारत को सपत्ति चाहिए सपत्ति के बिना उसकी प्रगति नहीं होगी।

१९२३ ई मे मुलतान मे जो हिंदू मुस्लिम दगे हुए थे उनके बारे मे एक बयान मालवीय जी ने दिया था और दूसरा वक्तव्य राजा जी ने। जब ये दोनो वक्तव्य श्री अरविंद को दिखाये गये उन्होने कहा ये लोग हिंदू मुस्लिम एकता को तावीज बना रहे हैं। सत्य को आंख से ओझल करना ठीक नहीं है। हिंदू मुस्लिम एकता का यह अर्थ तो नही है कि हिंदू मुसलमानो के अधीन हो जाय? हिंदू-मुस्लिम समस्या का सबसे अच्छा समाधान यह है कि हिंदू अपने को सगठित करें। तब हिंदू-मुस्लिम एकता आप-से-आप हो जायेगी। यह समस्या अत्यन्त कठिन है। हर बार जब हम समझते हैं कि हमने समस्या का समाधान कर लिया तब

हम एकल समस्या का दावा करते हैं।

इस्लाम की चर्चा एक दिन और निकली। उस दिन श्री अरविंद ने कहा, 'उस धर्म के साथ शांतिपूर्वक तुम कैसे रह सकते हो जो यह कहता है कि मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा? मुसलमान हिंदुओं का धर्म-परिवर्तन करते जायें और हिंदू मुसलमान को हिंदू नहीं बना सकें, इस आधार पर कभी एकता हो सकती है? एक ही रास्ता है जिससे मुसलमान शांतिमय बनाये जा सकते हैं। वे कट्टरपन और धर्मांधता को छोड़ दें। अभी तक उन्हें जो शिक्षा मिलती है वह काफी नहीं है, उन्हें अधिक उदार शिक्षा दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए टर्की के लोग धर्मोन्मादी नहीं हैं। जब वे लड़ते हैं, उनका उद्देश्य स्वतंत्रता के लिए लड़ना होता है, अधिकार के लिए लड़ना होता है, धर्म के लिए नहीं। दुनिया में जितने भी धार्मिक युद्ध लड़े गये हैं वे या तो क्रिश्चियनों के आरंभ किए हुए थे या मुसलमानों के। हाँ, अपने समय में यहूदियों ने भी थोड़ा अत्याचार जरूर किया था।

एक दिन किसी ने कहा, गांधी जी को यह चिंता अधिक नहीं है कि विपक्षी भी अहिंसक बनें। वे अपने आप को अहिंसक रखकर संतुष्ट हो जाते हैं।

श्री अरविंद ने कहा, 'यह सत्याग्रही की हिंसा है। अहमदाबाद में जब मिल-मजदूरों ने हड़ताल की थी तब गांधी जी ने उपवास किया था। आखिर को मिल-मालिकों को उनकी बात माननी पड़ी, इसलिए नहीं कि मिल-मालिक अपनी भूल को समझ गए थे, बल्कि इसलिए कि वे गांधी जी की मृत्यु का पाप अपने मत्थे लेना नहीं चाहते थे। लेकिन समझौते के बाद क्या हुआ? मिल-मालिक फिर वही सलूक करने लगे जो पहले करते थे। यही बात दक्षिण अफ्रीका में भी हुई। गांधी जी का सत्याग्रह कुछ थोड़ी दूर तक सफल हुआ था, लेकिन जब गांधी जी भारत लौटे, सरकार का रुख वही हो गया जो पहले था।

एक दिन चर्चा इस विषय की निकली कि दयालु और पवित्र शाकाहारी होता है या मांसाहारी?

श्री अरविंद ने कहा, आध्यात्मिक जीवन में भोजन को इतना अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए। आध्यात्मिक जीवन के लिए यह प्रश्न गौण है कि आदमी आमिष खाता है या नहीं। असली कसौटी यह है कि साधक में समता की दृष्टि है या नहीं। वह है तो फिर मछली या सब्जी से क्या फर्क पड़ता है? दार्शनिक दृष्टि से तो यह बताना भी कठिन है कि मछली में जीवन अधिक है और पौधे में कम है। पौधों में मन तो नहीं है, किंतु जीवन की चेतना आदमी से कम नहीं है। अब मैं मछली नहीं खाता हूँ, लेकिन उसका महत्त्व क्या है? बिल्ली को तो मछली देता ही हूँ।

रवींद्रनाथ और जगदीशचंद्र बोस की तुलना करते हुए श्री अरविंद ने कहा, टैगोर का विकास अधिक समृद्धिपूर्ण विकास है। उनका व्यक्तित्व भी बोस के व्यक्तित्व से बड़ा है।

धन के विषय में बोलते हुए श्री अरविंद ने कहा, गरीबी की प्रशंसा ईसाइयत की देन है। हिंदू धर्म दरिद्रता का वरेण्य नहीं मानता था। ब्राह्मण धन के प्रति अनासक्त तो होते थे किंतु निर्धनता की पूजा वे भी नहीं करते थे। गांधी जी का यह उपदेश निरर्थक है कि सत्याग्रही

को चाहिए कि वह अपने बच्चों के लिए धन की विरासत नहीं छोड़े।'

एक दिन चर्चा इस विषय की निकली कि आश्रमवासियों को जो खटमल और मच्छर सताते हैं, उनका क्या किया जाय?

नलिनीकांत ने कहा 'सुना जाता है कि कट्टर जैन किराये पर आदमी लाकर उसे खटमल वाली खाट पर सुलाते हैं।'

श्री अरविंद ने कहा 'इतिहास मे मैंने एक कहानी पढ़ी है। जब मोहम्मद गजनी आया उसने एक जैन राजा को हराकर उसे कैद कर लिया और सिंहासन पर उसके भाई को बिठा दिया। अब नये राजा को यह सूझे ही नहीं कि वह कैदी राजा का क्या करे। निदान उसने सिंहासन के नीचे एक समाधि खुदवायी और कैदी राजा को उसमें गाड दिया। इस प्रकार वह कैदी मर तो गया किंतु उसे मारने का पाप राजा को नहीं लगा।'

उस दिन श्री मां भी वार्ता के समय मौजूद थी। उन्होने कहा 'सच्चा अहिंसक जैन वही हो सकता है जो योगी हो। मै जब यहा आयी थी तब योगबल से ही मच्छरों को दूर रखती थी।'

एक साधक ने पूछा, 'लेकिन साप और बिच्छू को मारना उचित है या नही?'

श्री अरविद ने कहा 'क्यो नही? आत्म-रक्षा के लिए उन्हें मारना ही चाहिए। मेरा अभिप्राय यह नही है कि तुम उन्हे खोज-खोजकर मारो। लेकिन जब तुम्हें यह दिखायी पड़े कि उनसे तुमको या दूसरों को खतरा है तो निश्चय ही उन्हे मार डालना चाहिए।'

एक बार गांधी जी के सुपुत्र श्री देवदास गांधी श्री अरविद से मिलने गये थे। उन्होंने श्री अरविद से पूछा 'अहिसा के बारे में आपका क्या विचार है?'

श्री अरविंद ने कहा 'मान लो कल अफगान लोग भारत पर चढ़ाई कर दें तो अहिसा से तुम उनका मुकाबला कैसे करोगे?'

नलिनीकान्त से बात करते हुए श्री अरविद ने कहा, 'बंगाल मे जो बमबाजी होने लगी वह मेरी चलायी हुई नहीं थी। मेरा विचार तो एक साथ सारे भारत मे सशस्त्र क्रांति करने का था। लेकिन नौजवान बिलकुल बचपने की बातें करने लगे। वे मजिस्ट्रेटों को पीटने लगे। वे आतंकवादी हो गये डकैत हो गये। यह बिलकुल ही मेरा विचार नहीं था। बंगाल बड़ा ही भावनाशील है। वह परिणाम तुरत चाहता है। उसमें इतना धैर्य नही है कि वह वर्षों तक चुप रहकर तैयारी कर सके। हम भारत की आत्मा को जगाकर गुरिल्ला-पद्धति से युद्ध करना चाहते थे जैसे आयरलैंड के सिनफिन आंदोलन में हुआ था।'

एक दिन किसी ने कहा 'लगता है भविष्य में महाकाव्य अधिक-से-अधिक आत्मनिष्ठ (सबजेक्टिव) होते जायेंगे।'

श्री अरविंद ने कहा 'हां मालूम यही होता है। हमेशा से विचार यही रहा है कि महाकाव्य मे कोई कहानी भी होनी चाहिए। लेकिन अब लगता है कथा का लोप समाप्त हो गया। इसके सिवा नये युग की माग भी आत्मनिष्ठता की ही है और महाकाव्य को भी इस

मांग का जवाब देना होगा।

शिष्य ने कहा यह दुख की बात है कि टैगोर ने कोई महाकाव्य नहीं लिखा।

श्री अरविंद बोले टैगोर? उनके पास महाकाव्य वाला मस्तिष्क नहीं है। लेकिन कुछ वर्णनात्मक कविताएं उन्होने बहुत अच्छी लिखी हैं।

एक दिन पुराणी जी ने कहा यह दुख की बात है कि भारत की किसी भी नयी भाषा मे कोई ऐसी कृति नही है जिसे शुद्ध और सफल महाकाव्य कहा जा सके।

श्री अरविंद ने कहा ऐसा तुम क्यो कहते हो? मधुसूदन (माइकेल मधुसूदन) ने सफल महाकाव्य लिखा है। उस काव्य का प्रवाह बहुत बढ़िया है उसमें शैली और लोच भी है किंतु भीतर का द्रव्य उसका कमजोर है। बंगालियो का दिमाग महाकाव्य लिखने वाला दिमाग नही है इसलिए आश्चर्य होता है कि मधुसूदन ने बगला मे महाकाव्य कैसे लिखा। बंगला में जो रामायण और महाभारत हैं वे भी बहुत अच्छे नहीं हैं। मेरा खयाल है मधुसूदन ने होमर और वर्जिल को खूब पढ़ा था। प्रेरणा मधुसूदन को उन्हीं से मिली होगी।

श्री अरविंद ने और भी कहा महाकाव्य लिखने वाला मानस बहुत ही ऊंचा विस्तृत और शक्तिशाली होता है। बगाल का मन नाजुक है नर्म है। यही कारण हुआ कि फ्रेंच में भी कोई महाकाव्य नही लिखा जा सका। फ्रेंच भाषा में बहुत ही कोमल व्यवस्थित और प्रांजल है।

नलिनीकांत ने पूछा इकबाल की कविताएं आपने देखी हैं? कई लोग उन्हें टैगोर से बड़ा मानते हैं।

श्री अरविंद ने कहा उनकी उर्दू या फारसी की कविताएं तो मैने नहीं देखी हैं लेकिन उनका अनुवाद थोड़ा देखा है। मेरा खयाल है टैगोर की कविताओं के भीतर जो महत्ता और मौलिकता है वह इक्बाल की कविताओं में नहीं है।

महाकाव्य की बात फिर चली।

श्री अरविंद ने कहा साधारणत समझा यह जाता है कि महाकाव्य लिखने वाला कवि सदियों में कभी एक बार आता है। मगर उनकी संख्या कितनी थोड़ी रही है? और विषय की बात सोचो तो नेपोलियन का जीवन क्या महाकाव्य का विषय नहीं था? फिर भी उस पर महाकाव्य नहीं लिखा गया। इस दृष्टि से संस्कृत भाषा अतुलनीय है। उसने कितने महाकवि उत्पन्न किये? असल में संस्कृत भाषा ही महाकाव्य है। वाल्मीकि और व्यास तो अपनी जगह पर हैं ही। कालिदास भारवि आदि कवियों ने भी महाकाव्य की ऊंचाई प्राप्त कर ली है।

अंग्रेजी में लिखने वाले भारतीय कवियों की बात चलने पर श्री अरविंद ने कहा कठिनाई यह है कि वे लोग कभी-कभी लिखते तो सफलता के साथ हैं किंतु उनकी रचनाओं को देखकर यह कभी भी भासित नहीं होता कि उनकी कविताओं के भीतर से आदमी बोल रहा है। लगता है अंग्रेजी साहित्य को पढ़कर वे अंग्रेजी में कविताएं बना डालते हैं। सरोजिनी नायडू इनमें सबसे अच्छी हैं। उनकी अभिव्यक्तियां भी स्वच्छ हैं। लेकिन

उनका क्षितिज छाता है।

नयी कविता की बात चलाने पर उन्होंने कहा जिसका सूत्र विक्टोरिया के युग में ही छूट गया वह इन कविताओं को समझ नहीं सकता है। सुना है इंग्लैंड में आजकल कविताएं नहीं पढ़ी जाती हैं। और इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। मेरा खयाल है इसकी जवाबदेही नये कवियों पर थोपी जानी चाहिए।

पुराणी जी ने कहा थामसन ने मुझे ईलियट को पढ़ने को कहा था। मैंने उसे पढ़ा भी लेकिन कोई चीज मुझे मिली नहीं एजरा पौंड में भी नहीं। तब मैंने अमल से पूछा कि उसकी राय क्या है।

श्री अरविंद ने कहा उसकी राय क्या है?

पुराणी जी ने कहा अमल कहता है कि नाम तो उनका पौंड है मगर कीमत मैं उनकी पेनी भर भी नहीं मानता।

श्री अरविंद ने कहा इलियट आधुनिक कविता के प्रवर्तक हैं गरचे मैंने उन्हें ध्यान से पढ़ा नहीं है। मगर तुम यह जानते हो कि आधुनिक कवि की परिभाषा क्या है? आधुनिक कवि वह है *जिसकी कविता वह आप समझता है या उसके मित्र समझते हैं।*

एक दिन श्री अरविंद ने शिष्यों से पूछा हिटलर के साथ कर्नल बेक का एक इंटरव्यू छपा है। क्या तुमने उसे पढ़ा है?

शिष्यों ने पूछा दोनों की क्या बात हुई?

श्री अरविंद ने कहा दोनों एक दूसरे पर खूब चिल्लाये। कहते हैं हिटलर जब चिल्लाने लगता है उसकी आंखों में शीशे की चमक आ जाती है और जब यह चमक आ जाय तब उसका अर्थ सर्वनाश होता है। बेक के साथ बात करते समय भी हिटलर चिल्लाने लगा और उसकी आंख कांच की तरह चमकने लगी। इस पर बेक दुगुने जोर से चिल्लाने लगा। बेक को उतने जोर से चिल्लाते देखकर हिटलर आश्चर्य के मारे ठंडा हो गया।

एक दिन एक शिष्य ने कहा सुना है कमाल पाशा ने मिस्र के एक शरीफ आदमी को एक चपत मार दी क्योंकि रात्रि भोज पर वह फेज कैप पहनकर आया था।

श्री अरविंद बोले और उस पत्रकार की बात क्या तुमने नहीं सुनी है जिसने सरकार की आलोचना करते हुए लिख दिया था कि टर्की पर शासन कुछ पियक्कड़ों का चल रहा है? कमाल ने उस पत्रकार को एक दिन खाने पर बुलाया। पत्रकार तो इस न्यौते से ही कांपने लगा था। जब वह खाने की मेज पर बैठ गया कमाल ने उससे कहा नौजवान टर्की पर राज पियक्कड़ों का नहीं एक पियक्कड़ का चल रहा है।

एक दिन श्री अरविंद ने कहा सुभाष और उनके दल के लोग अभी भी उसी मनोदशा में हैं जो १९०६-७ की मनोदशा है। वे यह समझ नहीं रहे हैं कि परिस्थितियां बदल गयी हैं।

एक शिष्य ने कहा वे सरकार से लड़ना चाहते हैं।

श्री अरविंद बोले हर समय ध्येय प्राप्ति के लिए लड़ना जरूरी नहीं है। गांधी जी

का आदर्शवाद बड़ा है मगर वे जानते हैं कि जनता कहां तक जाने को तैयार है और अपनी अंतर्दृष्टि के बावजूद वे यह भी जानते हैं कि खुद उन्हें कहां तक जाना चाहिए।

बात एक दिन ग्रामोफोन रेडियो और सिनेमा पर चली। श्री अरविंद ने कहा ग्रामोफोन तो संगीत का हत्यारा साबित हुआ है। लेकिन दुर्भाग्यवश उन सभी चीजों का यही हाल है जो जनता का समर्थन चाहती हैं। सिनेमा और नाटक इसीलिए सस्तेपन की ओर जा रहे हैं।

शिष्य ने पूछा तो जो बड़े हैं वे इसे रोकते क्या नहीं?

श्री अरविंद ने कहा उन्हें भी समझौता करना पड़ता है क्योंकि वे ज्यादा श्रोता चाहते हैं और समझौते के प्रयास में हर अच्छी चीज बुरी चीज से मिश्रित हो जाती है। कला की ऊंची वृत्तियां जन-रुचि को खींचकर ऊपर ले जाना चाहती हैं। लेकिन समझौता करने पर जनता की रुचि ही कला को खींचकर नीचे ले आती है। हर चीज जो भीड़ को प्रसन्न करके जीना चाहती है अपनी ऊंचाई को छोड़कर नीचे जरूर आयगी।

श्री अरविंद का विचार था कि भारत में समाजवाद का भविष्य बहुत बड़ा नहीं है। एक दिन उन्होंने कहा यहां का किसान समाजवाद का साथ दूर तक नहीं देगा। जब तक तुम जमींदारों के खिलाफ हो किसान तुम्हारा साथ देगा। लेकिन जमीन जब उसे मिल जायगी तब समाजवाद की इतिश्री वह वहीं समझ लेगा। समाजवादी पद्धति में राज्य कदम-कदम पर दस्तंदाजी करता है और वह भी उन अमलों के द्वारा जो जनता को लूटते हैं।

जब श्री अरविंद अलीपुर-बम केस के मुकदमे से रिहाई पाकर बाहर आये थे उन्होंने कलकत्ते के पास उत्तरपाड़ा में एक भाषण दिया था जिसमें उन्होंने कहा था कि भारत का भविष्य सर्वहारा (प्रालेतेरियत) के हाथ है। जब तक वह नहीं जगेगा संपूर्ण देश का उद्धार नहीं होगा।

एक दिन एक शिष्य ने पूछा गांधी जी के आंदोलन के बारे में आपके क्या विचार हैं?

श्री अरविंद ने कहा गांधी जी भारत को स्वतंत्रता की ओर बहुत दूर तक ले गये हैं। किंतु उनका आंदोलन उच्च मध्यम वर्ग तक ही सीमित रह गया है जब कि हम लोग निम्न मध्यम वर्ग को भी जगाने की कोशिश कर रहे थे।

एक और दिन गांधी जी की बात चलने पर उन्होंने कहा गांधी जी ने चरखे को धार्मिक सिद्धांत बना दिया है और उन लोगों को कांग्रेस के बाहर रख छोड़ा है जो सूत कातने को तैयार नहीं हैं। लेकिन उनके अनुयायियों में कितने लोग हैं जो चरखे में हृदय से विश्वास करते हैं? कुछ आन-धन के लिए इतनी अधिक शक्ति का अपव्यय करना मुझे तर्कसम्मत नहीं दीखता।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के प्रति श्री अरविंद के बड़े ही ऊंचे विचार थे। वार्तालाप में एक दिन उन्होंने कहा जब मैं बंगाल आया मैंने बंगाल के नेताओं को एकत्र किया और उनसे कहा कि हमें चाहिए कि हम तिलक जी को अपना नेता मानें और नरम दल वाले नेताओं को बाहर धकेलकर कांग्रेस पर अपना कब्जा जमा लें। सभी नेताओं ने इस विचार

को पसंद किया और तिलक जी भी हमारा नेतृत्व करने को तैयार हो गये। तिलक जी सचमुच महापुरुष थे। उनमें स्वार्थ की गंध तक नहीं थी।'

एक शिष्य ने पूछा, 'तिलक जी ने गीता पर जो ग्रंथ लिखा है उस पर आपका क्या विचार है? क्या यह ग्रंथ ऊपर की प्रेरणा से लिखा गया है?'

श्री अरविंद ने कहा, 'मैंने तिलक जी का गीता-रहस्य पढ़ा नहीं है।'

शिष्य ने पूछा 'तो फिर आपने उसकी समीक्षा कैसे लिख डाली?'

श्री अरविंद ने कहा 'संभव है बिना पढ़े ही लिख दी हो।'

इस पर गोष्ठी हंस पड़ी।

तब श्री अरविंद ने कहा 'पुस्तक को उलट-पुलटकर मैंने जरूर देखा है। लेकिन मेरा खयाल है यह प्रेरणा नहीं मस्तिष्क की उपज है। तिलक जी की मानसिक शक्ति बड़ी प्रबल थी।'

श्री अरविंद ने राजनीति को क्यों छोड़ दिया इस विषय पर बोलते हुए एक दिन उन्होंने कहा था कि राजनीति मैंने इसलिए नहीं छोड़ी कि उस क्षेत्र में मैं अब आगे कुछ नहीं कर सकता था। *कारण यह था कि ऊपर से मुझे आदेश मिला था और मैं नहीं चाहता था* कि योग में कहीं से भी बाधा या विक्षेप पड़। मैंने राजनीति से अपना सारा संबंध तोड़ लिया लेकिन मुझे यह विश्वास हो गया था कि राजनीति में मैंने जिस कार्य का श्रीगणेश किया है वह रुकनेवाला नहीं है। उसे आगे बढ़ानेवाले लोग आयेंगे और स्वतंत्रता मिलकर रहेगी। यह विश्वास हो जाने पर ही मैंने राजनीति स अपने को अलग कर लिया।

सन् १९२० में उनके कुछ राजनीतिक साथियों ने चाहा कि श्री अरविंद फिर से राजनीति में आ जायें। श्री अरविंद ने उस समय भी यही कहा था कि 'राजनीति को मैं हेय दृष्टि से नही देखता न मैं अपने को उन लोगों से ऊंचा समझता हूं जो राजनीति का काम कर रहे हैं। १९०३ से १९१० तक मैंने कोशिश की कि स्वतंत्रता प्राप्त करने का संकल्प जनता के हृदय में दृढ़ता से बैठ जाय। यह काम पूरा हो गया। अमृतसर कांग्रेस ने उसपर मुहर लगा दी है। देश में बड़े-बड़े नेता और कार्यकर्ता मौजूद हैं। स्वराज्य तो होकर रहेगा। मेरी साधना का विषय अब यह है कि भारत इस स्वराज्य का उपयोग किसलिए करेगा।'

श्री अरविंद
की
कविताएँ

स्वर्णिम प्रकाश

मानस-तल पर उतरा तेरा स्वर्णिम प्रकाश।
मन के मटमैले कक्ष ज्योति से निखर उठे,
मानो सूरज ने उन्हे स्पर्श से दीप्त किया।
उज्ज्वल उत्तर
उस ज्ञान-भूमि को जो अदृश्य, अभिगोपित है,
अब शान्त ज्योति की शिखा,
मृदुल आभा उदार।

स्वर-नलिका मे उतरा तेरा स्वर्णिम प्रकाश,
मेरी समस्त वाणी अब दिव्य, विभासित है।
तेरी महिमा, तेरी स्तुति का आख्यान मधुर
अब एक मात्र गायन मेरा।
अमरो की पीकर सुरा शब्द मदमस्त हुए।

उतरा उर-अन्तर में तेरा स्वर्णिम प्रकाश।
अपनी अनन्तता से तूने आक्रान्त किया
मेरे जीवन को। अब यह जीवन नहीं,
भव्य मन्दिर तेरा।
आवेगो का अब एक लक्ष्य, केवल तू है।

चरणों तक आया उतर दिव्य स्वर्णिम प्रकाश।
अब जो मिट्टी थी, बनी वही आसन तेरा,
तेरी क्रीडा का क्षेत्र, दिव्य लीला-प्रागण।

(गोल्डन लाइट)

विकास

अदृश्य की योजना में
सब-कुछ समाप्त नहीं हुआ है।
मन क परे एक और मन है
जा हमारे ज्ञान की परिसीमा का बुला रहा है।
एक अकल्पित सामजस्य
उनकी इन्तजारी कर रहा है
जा अभी नही जनम हैं।

निर्जीव पृथ्वी का अनगढ आरम्भ
पड और पौध का मस्तिष्क-विहीन स्पन्दन
उन्हान विचार की पृष्ठभूमि तैयार की—
विचार त्रा देवोपम जन्म के लिए
मनुष्यता क ढाँचे का विस्तृत कर रहा है।

एसी शक्ति त्रिस मानवीय सकल्प
या सामर्थ्य नहीं प्राप्त कर सकी,
एसा ज्ञान जा अनन्तता म विद्यमान है,
एसा आनन्द जा हमार सघर्ष
और द ख क परे पडता है
उस जीव की नियति है
जिस पृथ्वी की बाधा राक रही है।

ओ निर्जीव पत्थर से बढ कर
मन के सोपान पर चढने वाले,
उस चमत्कारमय शिखर पर पहुँचो,
जो अभी जीता नहीं गया है।

(इवोल्युशन)

आत्मसमर्पण

तुम प्रकृति हो, सूक्ष्म आत्मा हो;
असली निवासी तुम हो,
मै तो मात्र गेह हूँ।
प्रभो, मै तुम्हारा साधन और यन्त्र हूँ।
ऐसा करो कि मेरा मर्त्य अस्तित्व
तुम्हारी महिमा से मिलकर एकाकार हो जाय।

मैने अपना मन तुम्हें दे दिया है,
जिससे तुम्हारा मन इसमे नहर खोदे।
मैने अपनी इच्छा तुम्हारे चरणो पर धर दी है,
जिससे वह तुम्हारी इच्छा बन जाय।
मेरे किसी भी अंश को पीछे मत छोड़ो
रहस्यपूर्ण और अनिर्वचनीय ढंग से
अपने साथ मुझे एक होने दो।

तुम्हारा प्रेम, जो निखिल विश्व के प्राणो मे
स्पन्दन भरता है,
उसके साथ मेरे हृदय को स्पन्दित होने दो।
पृथ्वी के उपयोग के लिए
तुम मेरे शरीर को इंजिन बनाना।

मेरी धमनियो और शिराओ मे
तुम्हारे आनन्द की धारा बहेगी।
तुम्हारी शक्ति जब छूटेगी
मेरे विचार प्रकाश की सीमा बनेंगे।
ऐसा करो कि मेरी आत्मा
निरन्तर तुम्हारी पूजा मे लीन रहे।
और प्रत्येक आकार
तथा प्रत्येक आत्मा मे
तुम्हारा दर्शन करे।

(नरेन्द्र शीर्षक कविता)

रूपान्तरण

चलता मेरा श्वास सूक्ष्म लयपूर्ण धार मे।
अग-अग पूरित महान् भागवत शक्ति से।
पान किया है मैने दिव्य अनन्त सुधा का
जैसे कोई पिये सुरा दानव विराट की।

काल नाटय मेरा स्वप्नो का भव्य प्रदर्शन।
तन का प्रति कोशाणु प्रदीपित भासमान है।
रध्र-रध्र मे दीपित शुभ आनन्द-शिखाएँ।

सुख-सिहरित नाडियाँ देह की परिवर्तित हो
कुल्याएँ बन गयी दूधिया दिव्य मोद की
उतर सके जिनमे होकर वह प्लावन-गति से
जो गोचर से परे तत्त्व सबसे महान है।

अब अधीन मै नही रुधिर के और मास के
न तो प्रकृति का दास कुटिल जिसका शासन है।
फेंक-फेंक सकीर्ण पाश इन्द्रियाँ न मुझको
अब सकती हैं बाँध मोहमय आकर्षण मे।

मापहीन हो गया दृश्य; आत्मा के सम्मुख
अब न किसी भी ओर क्षितिज-रेखा है कोई।
तन मेरा जीवित, प्रसन्न है यन्त्र देव का।
मेरी आत्मा अमर ज्योति का महासूर्य है।

(ट्रान्सफार्मेशन)

शरीर

यह शरीर जो एक समय मेरा ससार था,
अब एक तुच्छ गठरी है,
जिसे आत्मा ढो रही है।

आत्मा की शक्ति अपार है।
किन्तु यह थैली कितनी छोटी है!
आत्मा उसे लिये हुए
महत् से महत्तर लक्ष्य की ओर
जा रही है।

आत्मा की आवश्यकता भीमाकार है।
यह क्षुद्र शरीर उसकी पूर्ति
नही कर सकता।
पूर्ति उसकी अनन्तता
कर सकती है।
तब भी आत्मा उसे लिये हुए
चल रही है,
क्योंकि उसकी तहो मे
अनन्तता तक जाने का पार-पत्र
छिपा है।

आत्मा के सामने
अनन्त देश और काल
अपनी स्वर्णिम घटनाओं का
परिदृश्य फैलाते हैं।

उसका हृदय मधुर और भीषण
आनन्द से भरा हुआ है।
उसका मन महान और दूरस्थ
वस्तुओं की ओर देख रहा है।

संकीर्ण भवन का
यह लघु निवासी
संसार को एकसीम बनाये हुए
कितना विकसित हो गया है।

(द भॉडी)

जन्म का चमत्कार

आत्मा काल के भीतर से यात्रा करती है
जन्म से जन्म तक ब्रह्माण्ड के पथ पर।
गहराई मे वह प्रच्छन्न है
ऊँचाई पर उदात्त।
कृमि से विकसित होते-होते
वह ईश्वर बन जाती है।

आत्मा सनातन पावक की चिनगारी है।
अजन्मा के निमित्त गृह-निर्माण के लिए
वह जड़ के भीतर आयी।
सूर्यहीन अचेतन निशा ने
ज्वाला को ग्रहण किया।
मूक और असहाय वस्तुओ के
जड बीज मे जीवन का स्पन्दन हुआ।

विचार ने उज्ज्वल आकार की कल्पना की।
निद्राचारिणी प्रकृति की
नींद में कोई जनमा,
जो सोचने वाला प्राणी था,
जो आशा कर सकता था,
प्रेम कर सकता था।
चमत्कार धीमी गति से
अब भी चल रहा है।
पंक और प्रस्तर में से
अमरता जन्म लेगी।

(द मिरेकल ऑव बर्थ)

निर्वाण

जो एकाकी और निःशब्द है,
वही है।
बाकी सब-कुछ उन्मूलित हो गया।

मन को विचारो से मुक्ति मिल गयी
और हृदय को शोक से।
विश्वास नही होता,
लेकिन हृदय और मन, दोनो
अनस्तित्व मे बढ़ रहे हैं।
मै नही हूँ, प्रकृति नही है,
ज्ञात और अज्ञात, कुछ भी नही है।

नगर छायाचित्र है,
जिसमे स्वर नही है।
उसका बहना काँपना सब अवास्तविक
आकार बहता है, जिसमे उभार नही है
सिनेमा के रिक्त आकारो की तरह।
ससार सैकत भित्ति के समान
निस्तट खाडी मे टकरा कर टूट गया।

केवल अक्षय और असीम है।
जो कुछ था उसके स्थान पर
एक आकारहीन महाशान्ति छा गयी है।
जो मैं एक समय था उसके भीतर
एक नीरव नामहीन रिक्तता है।
वह या तो अज्ञेय के भीतर जा कर
विलीन होगी
अथवा अनन्तता के प्रकाशमान समुद्र
के साथ वह तरंगित होगी।

(निर्वाण)

सुर्रियल विज्ञान का स्वप्न

किसी ने स्वप्न देखा
ग्रन्थि ने हैमलेट की रचना की
जापरी के घर पर मद पान किया
और वह अमर हो गयी।
हारमोना की एक कमेटी बैठी।
उसने एजियन समुद्र के तट पर
इलियड और ओडसी लिखी।

बोधि-वृक्ष के नीचे थायरड
लगभग नग्न होकर
ध्यान कर रहा था।
उसने शाश्वत प्रकाश देखा।
फिर समाधि से वह उठा।
धर्मचक्र का उसने प्रवर्तन किया
और अष्टांग मार्ग का प्रचार।

एक दिमाग को पेट के गड़बड़ होने से
प्रेरणा मिली।
यूरोप भर में वह वज्र-निर्घोष करने लगा।
उसने विजय पायी राज्य किया
और वह फिर हारा।
सेंट हेलेना से शायद
वह स्वर्ग की ओर गया।

सुररियलिस्ट ससार
इसी प्रकार चलता रहा।
एक वैज्ञानिक परमाणुओं से खेलता रहा।
और पूर्व इसके कि भगवान को
चिल्लाने का मौका मिले
वैज्ञानिक ने सारी सृष्टि को ही
साफ कर दिया।

(ए ड्रीम आव् सुररियल साइंस)

विज्ञान के अनुसन्धान

[१]

क्या तुम्हारा ससार
विद्युत के समूह से चलता है?
मगर वह तो एक ज्योति की कणिका है
चिनगारी का चक्र है,
उस पावक का कण है
तुम्हारा नेबुला और तुम्हारा सूर्य
जिसके इतस्तत विकीर्ण ज्वाला बिन्दु हैं
झपक और झिलमिलाहट हैं।

अन्य शक्तियाँ भी हैं
जो अदृश्य प्रकाश स अच्छादित
काम करती हैं।
एक अन्तहीन अनादि गति है
जो काल की घटिकाओं म
उस एक के अमूर्त आकाश म
फैल रही है सिमट रही है।

तुम्हारे अनुसन्धान सतही चीजे हैं
स्क्रीन पर की घटनाएँ और प्रतिमास हैं।
ये प्रकृति के द्वारा बतायी गयी युक्तियाँ हैं।
किन्तु उनके पीछे प्रकृति के छिपे हुए भेद
घात लगाय बैठे हैं।

अनुभववादी मस्तिष्क हर चीज के साथ
अनगढ बर्ताव करता है।
मगर प्रकृति के ये भेद
मस्तिष्क को अज्ञात हैं।
वे अछूते और निरापद हैं।

सनातन ऊर्जा निरन्तर दौड रही है।
जितने कुछ का पता चला है
वह कुछ नही है
मात्र इशारा है सकेत है निशान है।

[२]
प्रकृति ऊर्ध्व गमन मे है।
वह अपनी मजिल तक कैसे पहुँचगी?
मजिल तक वह मानवात्मा की
सुदृढ कल्पना से पहुँचगी
मनुष्य की उस धीमी निस्तेज बुद्धि से नही
जो लड़खड़ाती है कदम-कदम पर ठोकर खाती है,
जो आकार का विच्छेदन और विश्लेषण करके
संतोष कर लेती है।

दिमाग का बीजगणित
इन्द्रिय की योजना
प्रतीक की भाषा जिसमें न गहराई है,
न पंख है

चीजा के बाहरी आकार को
सँभालन की शक्ति
य ही हमारी बुद्धि क
अल्प अर्जन हैं।

सत्य इसस कहीं महान् है
और उसक रास्त भी अधिक गम्भीर हैं।
एक आशय जा अपन भीतर
सब कुछ समट हुए है
एक स्पर्श जा प्रकाशमान है
बहुत समीप है
एव दृष्टि जा आन्तरिक है
घनिष्ठ है
एक विचार
जा शब्दा की भूलभुलैया से मुक्त है।

एक शान्त हृदय
जिसकी सहानुभूति सबके साथ है।
एक मकल्प जा एक कन्द्रित है
विस्तृत है महान् है।

[३]
हमारा विज्ञान अमूर्त है
नीरस है सक्षिप्त है।
जीवित समग्र का काट कर
वह सूत्रा म विभक्त करता है।
इसके पास मानस है मस्तक है
लकिन आत्मा नहीं है।
हर वस्तु का जा शिल्पित
बाहरी आकार है
विज्ञान उसे ही देखता है।

लेकिन गहराइयों को जाने बिना
संसार जाना कैसे जा सकता है?
दृश्य का मूल अदृश्य में है।
और अदृश्य का जो अर्थ है,
उसे हर अदृश्य किसी गम्भीरतर अदृश्य में
छिपाये हुए है।

जिन चीजों को तुम थाह रहे हो,
वे वस्तुओं के असली रूप नहीं हैं।
प्रत्येक वस्तु उन शक्तियों का समूह है
जो आकार पा गयी हैं।
पकड़ी जाने पर भी
उन शक्तियों की आन्तरिक रेखाएँ
छिटक कर अथाह चेतना में
चली जाती हैं,
जिनकी थाह लेना
बुद्धि के माप-दण्ड के पार है।

इस अथाह को थाहो,
वहाँ तुम्हें एक अस्तित्व मिलेगा,
जो अनन्त है, अनाम है,
नीरव है, अज्ञेय है।

(डिसकवरीज ऑव माइंड)

अमरता

स्वयं भगवान की जो स्वतन्त्रता है,
मैने उसका छक कर पान किया है
इससे मुझे एक गुह्य
आत्मतन्त्रता की प्राप्ति हुई।

मिट्टी की पोशाक अभी कायम है।
मगर उसके भीतर
मै विश्वहीन अस्तित्व हूँ,
स्वतन्त्र और विराट।
उस महिमा के एक क्षण की मुहर ने
मुझे विश्व-प्रपंच के फन्दो
और बेड़ियो से मुक्त कर दिया।

काल और मृत्यु का उन्मूलन करके
मेरी प्रकृति अमरता के गम्भीर
अन्तराल मे निवास करती है।

ईश्वर ने अज्ञानता के साथ
एक एकरारनामा लिखा था।
वह एकरारनामा फट गया।
काल अब सनातन का अन्तहीन वर्ष है।

मेरी आत्मा, जो जीवित,
अनन्त आकाश का सत्व है,
पार्थिव परिधान के पीछे
अपने अजन्मा, ज्योतिर्मय शरीर की
रूप-रेखा तैयार कर रही है।
मिट्टी के मुखौटे के पीछे
अक्षय आकृति का ढाँचा
स्पष्ट होता जाता है।

(इमोर्टैलिटी)

इलेक्ट्रोन

जिसकी बुनियाद पर सभी आकारो
सभी ससारो का निर्माण हुआ है
वह इलेक्ट्रोन उछल कर
अस्तित्व मे आ गया।
इलेक्ट्रोन ईश्वर का कण है।

सनातन ऊर्जा मे से
एक चिनगारी छिटकी।
यह चिनगारी असीम की
अन्धी, छोटी कोठरी है।
इस छोटे-से प्रज्वलित रथ मे
शिव सवार हैं।

एक ने अनेक होने की युक्ति निकाली।
अपने एकत्व को वह
अदृश्य रूपो मे छिपाये हुए है
जो अदृश्य रूप असीमता को अर्पित
काल के छोटे-छोटे मन्दिर हैं।

अणु और परमाणु
अपनी अदृश्य योजना में
एक अद्‌भुत एकता के प्रासाद को
छिपाये हुए हैं,
जो प्रासाद स्फटिक और पौधे का है।
कीट, पशु और मनुष्य का है—
मनुष्य, जिस पर विश्व की एकता उतरेगी।
और आदमी की आत्मा की चिनगारी
बढ़कर प्रभु का सम्पूर्ण प्रकाश बन जायेगी।
कालहीन, निस्सीम और विशाल।

(इलेक्ट्रोन)

आकार

ओ निराकार और असीम की पूजा करने वाले?
आकार की अवज्ञा मत करो।
आकार में जो बसता है,
वह ईश्वर है।

प्रत्येक ससीम के भीतर
गम्भीर असीम का वास है।
अपनी विशुद्ध, आनन्दमय आत्मा को
आवरण मे डाले हुए
ससीम के भीतर असीम छिपा है।

अपनी दुरूह अशब्दता के हृदय मे
आकार परमेश्वर के रहस्य की
महिमा को छिपाये हुए है।

आकार निस्सीमता का चमत्कार-कुटीर है।
आकार मृत्युजय वैखानस की गुफा है।
भगवान की गहराइयों मे भी सौन्दर्य है।

जो स्वयं महाश्चर्य है,
उसी का चमत्कार अपने वास के लिए
सृष्टि की रचना करता है।

(फार्म)

आमंत्रण

(श्री अरविन्द की 'इन्विटेशन' कविता का अनुवाद)

[१]

झझा का भीषण झकोर,
दुर्दिन के सह आघात प्रबल
चला जा रहा मै मरुथल के
पार, पहाडो के ऊपर।
जो भी मेरे साथ चलेगा,
उसे पार करना होगा
जल का तीव्र प्रवाह, बर्फ के
व्यूह छोड सब सुख भू पर।

[२]

मै बसता हूँ नही कपाटो
प्राचीरो से भरे हुए,
प्रभाहीन, अस्वच्छ, तुच्छ
सकीर्ण तुम्हारे नगरो मे।
नील शून्य मे सिर के ऊपर
है मेरे भगवान खडे।
नीचे टकराते मुझ से
तूफान कुपित हो डगरो मे।

[३]
क्रीडा का सगी मेरा एकान्त,
जहाँ केवल मै हूँ।
मै विपत्तियो और सकटो को
बढ़ गले लगाता हूँ।
बड़ी और स्वच्छन्द जिन्दगी
जीने की हो चाह अगर,
झंझाओं से घुली तुग
चोटी पर तुम्हे बुलाता हूँ।

[४]
मै प्रभजनो का प्रचण्ड
स्वामी, सम्राट पहाड़ो का,
आजादी की रूह और
हूँ अहंकार का सत निर्मल।
जिसको भी आना हो
मेरे साथ, सकटों से खेले,
और हृदय मे भर कर लाये
निर्भयता, प्राणो मे बल।

आमंत्रण

(श्री अरविन्द की 'इन्विटेशन' कविता का अनुवाद)

[१]
झझा का भीषण झकोर,
दुर्दिन के सह आघात प्रबल
चला जा रहा मै मरुथल के
पार पहाड़ो के ऊपर।
जो भी मेरे साथ चलेगा
उसे पार करना होगा
जल का तीव्र प्रवाह, बर्फ के
व्यूह छोड सब सुख भू पर।

[२]
मै बसता हूँ नही कपाटो
प्राचीरो से भरे हुए,
प्रभाहीन, अस्वच्छ, तुच्छ
सकीर्ण तुम्हारे नगरो मे।
नील शून्य मे सिर के ऊपर
है मेरे भगवान खडे।
नीचे टकराते मुझ से
तूफान कुपित हो हगरो मे।

[३]
क्रीड़ा का स्वर्ग मेरा एकान्त,
जहाँ केवल मैं हूँ।
मैं विपत्तियों और सङ्कटों को
बढ़ गले लगाता हूँ।
बड़ी और स्वच्छन्द ज़िन्दगी
जीने की हो यदि चाह,
झंझाओं में घूमो तुम
चोटी पर तुम्हें बुलाता हूँ।

[४]
मैं प्रभंजनों का प्रचण्ड
स्वामी, सङ्कट पहाड़ों का,
आज़ादी की रूह और
हूँ अहंकार का मन निर्मम।
जिसको भी चलना हो
मेरे साथ, सङ्कटों से खेले,
और हृदय में भर कर लाये
निर्ममता, प्राणों में बल।

यह पिशाच थर-थर करता है दिव की ज्वालाओ से।
जो कुछ है पवित्र सुखप्रदायी उसे नही जँचता है।
लिप्सा लौकिक सुख विलास से और अन्त में दुख से
वह करता है राज और अपना नाटक रचता है।

[१०]
चारो ओर अशान्ति कलह कोलाहल और तिमिर है।
जिस प्रदीप को मनुज सूर्य कहता है वह छाया है।
भटके हुए भ्रान्त जीवन पर जो प्रकाश गिरता है
वह अमरो की महाज्योति की बस आधी आभा है।

[११]
मनुज जला पाता है जो छोटी मशाल आशा की
उसका प्रभापुज बुझ जाता शेष नही रहता है।
नर की सारी प्राप्ति सत्य की एक क्षुद्र कणिका है।
वह सराय है जिसे आदमी तीर्थधाम कहता है।

[१२]
सत्यो का जो सत्य आदमी उससे भय खाता है।
प्रस्तुत है वह नही चिरन्तन आभा को वरन को।
वह पुकारता मूढ देव को और दनुज वेदी पर
मनुज बैठ जाता है दानव की पूजा करने को।

[१३]
जो था पहले मिला आज फिर उसे खोजना होगा।
क्योकि छिन्न-मस्तक प्रतिपक्षी फिर से जी जाते हैं।
सघर्षों पर एक बार जय पाना नही अलम् है।
निष्फल जीवन के समक्ष वे बार-बार आते हैं।

[१४]
मुझे सहस्रों घाव लगे हैं, लगते ही जाते हैं।
किन्तु दानवों के प्रहार से मैं तो नहीं झुकूँगा।
जब तक परम देव की इच्छा पूर्ण नहीं होती है,
लक्ष्य-सिद्धि के बिना भला मैं पथ में कहाँ रुकूँगा?

[१५]
मुझे चिढ़ाते हैं यह कहकर दनुज-मनुज, दोनों ही—
'असमाध्य कल्पना तुम्हारी, तुम क्या विजय करोगे?
रँग पाओगे अंतरिक्ष को किस प्रकार पावक से?
क्रिया नष्ट होगी असफल हो तुम व्यर्थ ही मरोगे।

[१६]
'जड़ समुद्र की छाती पर हम परित्यक्त बालक हैं
लौह नियति से बद्ध, कभी इस पर भी ध्यान गया है?
या केवल बकवास मचाने को भू पर आये हो
स्वर्ग-लोक है सुखी वहाँ जो कुछ है दिव्य नया है?

[१७]
'तिमिर-क्षेत्र हो भले भूमि, पर यह धरणी अपनी है।
टिम-टिम छोटी शिखा हमारी सुथिर न रह सकती है।
यह कैसे सामना करेगी ज्वलित, दिव्य आभा का?
देव चाहते जो, उसको भू कैसे सह सकती है?

[१८]
'चलो, चलें, वध करें स्वर्ग के इस प्रलापकारी का।
तभी हमारे हृदय मुक्त दुविधा में हो पायेंगे।
इसके उच्च, कठोर घोष श्रवणों में नहीं पड़ेंगे।
विस्तृत, शुभ्र शांति के बंधन में भी बच जायेंगे।'

[१९]
मर मर्त्य हृदय म पर उद्यत दवता खड़ा है
नियति भाग्य प्रारब्ध भ्रान्तियाँ भूला स लडन का
नामहीन निर्मता विराट क लिए विश्व क पथ पर
पग स रौद कुलिश कर्दम का चूर-चूर करन का।

[२०]
जाआ वहाँ जहाँ पर काई अन्न तक नहीं गया था
खादा खादा ध्वनि कहती है आग सत्य कहीं है।
पहुँचा नीच उस पत्थर पर जिसपर नीव टिकी है।
दस्तक दा उस दर पर जिसकी कुजी कहीं नहीं है।

[२१]
दखा मैने असत् वृक्ष का मूल बडा गहरा था।
चीजा की जड स असत्यता लिपटी हुई पडी थी।
हरि साय थे महासर्प पर जटिल याग निद्रा म।
भूरी नरसिहनी भीष्म पहरे पर जगी खडी थी।

[२२]
मन के सतह-लाक पर है जो देव और जीवन का—
जो समुद्र है असतृप्त दानो का मैन छोडा।
फिर शरीर की अन्ध वीथियो मे डुबकियाँ लगाकर
चरणो को मैने रहस्यमय अघोलाक दिशि मोडा।

[२३]
छाना है मैने प्रचण्ड उर-अन्तर मूक मही का।
पीडा आह कराह दर्द की घटी वहाँ सुनी है।
देखा है वह स्रोत जहाँ से दु ख जन्म लेते हैं।
और नरक कैसे बनता है यह भी बात गुनी है।

[२४]
मै हूं जहाँ, वहाँ ऊपर विषधर फुकार रहे हैं,
पैशाचिक आवाज घुमडकर क्षण-क्षण रही उबल है।
पर मैंने तो शून्य चीर उस स्थिति को देख लिया है,
जहाँ प्रथम आभा प्रकटी, पहला विचार जनमा था।
घूम चुका हूँ उस खाई मे, जो नितान्त निस्तल है।

[२५]
उच्च भयावह सोपानो पर मेरे चरण पड़े हैं।
कवच पहन निस्सीम शान्ति का रहा किन्तु निश्चल मै।
ले आया आखिर पावक मै ईश्वरीय आभा का।
और उसे बो दिया मनुज के अगम, अगाध, अतल मे।

[२६]
तब भी था मै वही, सदा जो मेरा रूप रहा था।
पर जो थे आवरण, किसी ने उनको फाड दिया है।
प्रभु की वाणी सुनी और मैंने उनकी इच्छा को
निज प्रशान्त, विस्तृत ललाट पर सादर वहन किया है।

[२७]
गहराई जुड़ गयी शिखर से, सेतु हुआ निर्मित है।
अब स्वर्णिम जल का प्रपात नीरव, अजस्र झरता है—
उस सुनील पर्वत मे, जो सुर-धनु से सजा हुआ है।
इस तट से उस तट तक जल जगमग-जगमग करता है।

[२८]
दीप्त हो उठा अनन्त स्वर्ग का पृथ्वी की छाती मे।
अमर सूर्य अब तो जगता है इसी मृत्ति-वेदी पर।
चमत्कार! पड़ गया रंध्र जनमान्तर के मन्थन में।
जिसने देह धरी थी, वह आत्मा अखण्ड, अविनश्वर—

[२९]
चाह रही बनना सत-चित्-आनन्द-लोक की ज्वाला।
स्वर्णारुण सोपान-मार्ग पर पग नीचे धरते हैं—
दिव के अमृत-पुत्र अनुरंजित अपनी ही आभा से।
'उन्मूलित हो गया तिमिर ' यह तूर्यनाद करते हैं।

[३०]
तनिक और है देर द्वार-पट इस नवीन जीवन के
रचित-खचित होंगे प्रकाश से चन्द्रभूति-आभा से।
छत होगी स्वर्णाभ और गच हागा मणिकुट्टिम का।
सारा जगत प्रकाशमान हागा अपरूप विभा से।

[३१]
अपना स्वप्न छाड दूँगा मै उज्ज्वल रजत-पवन में।
नील-स्वर्ण परिधान पहनकर ज्योति अलौकिक धारे
रूपान्तरित इसी पृथ्वी पर तब मनोज्ञ मगलमय
धर कर देह करेंगे विचरण जीवित सत्य तुम्हारे '

□□